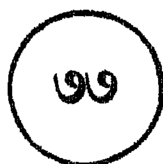
गंगा-पुस्तकमाला का सतहत्तरवाँ पुष्प

सौ अजान और एक सुजान



स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट



सौ अजान और एक सुजान

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का सतहत्तरवाँ पुष्प

सौ अजान और एक सुजान

[एक प्रबंध-कल्पना]

लेखक

स्वर्गवासी पं० बालकृष्ण भट्ट

रे जीव शास्त्रजमवाप्नुहित्वमसारप्रसङ्गं त्यजगा हाय ;
भव्योपिऽनिन्दां लभते कुसङ्गात्सिन्दूरबिन्दुर्विधवाललाटे ।

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

२९-३०, अमीनाबाद-पार्क

लखनऊ

पंचमावृत्ति

सजिल्द १।)] सं० १९८९ वि० [सादी १)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ



मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

सौ अजान और एक सुजान

पहला प्रस्ताव

"खोटे को सँग साथ, हे मन, तजो अँगार ज्यों ;
तातो जारै हाथ, सीतल हू कारो करै।"

बरसात का अंत है। दुर्व्यसनी के धन-समान मेघ आकाश में सिमिट-सिमिट लोप होने लगे हैं। शरत् का आरंभ हो गया। शीत अपना सामान धीरे-धीरे इकट्ठा करने लगी। कुँआर का महीना है। उजाली रात है। ग्यारह बजे का समय है। सन्नाटा छाया हुआ है, मानो प्रकृतिदेवी दिन-भर की दौड़-धूप के उपरांत थकी-थकाई विश्राम के लिये छुट्टी लिया चाहती है। चंद्रमा सोलहो कला से पूर्ण होने में कुछ ऐसा ही नाम-मात्र का अंतर रखता हुआ अपनी प्रेयसी निशा की मुखच्छवि पर निहाल हो मानो हँस-सा रहा है, जिसकी सब ओर छिटकी हुई चाँदनी सम-विषम भू-भाग को एक आकार दरसाती हुई चक्रवर्ती राजा की आज्ञा-समान सर्वत्र व्याप रही है; मानो वितान रूप नीले आकाश-शामियाने के नीचे सफ़ेद फ़र्श बिछा दिया गया हो। मालूम होता है, शरत् की सहायता पाय धरती आकाश के साथ होड़

लगाए हुए है। वहाँ निर्मल आकाश में मोती-से चमकते हुए तारे अपने स्वामी निशानाथ के प्रसन्न करने को निशा-वधूटी के लिये उपहार बन रहे हैं, यहाँ कन्या के सूर्य के प्रचंड आतप में कीचड़ पानी सूख जाने से स्वच्छ हो, छिटकी हुई चाँदनी के मिस हँसती-सी धरती, फूले हुए कल्हार, गुलनार, कुँई, कुंद आदि भाँति-भाँति के फूलों का गहना सजे, उसी निशा नई दुलहिन को मुँह-देखाई देने को प्रस्तुत है। वहाँ एक चंद्रमा है, यहाँ ठौर-ठौर नवयुवतियों के अनेक चाँद-से मुखड़ों की चाँदनी कामियों के मन में मनसिज का विकास कर रही है। ऐसे समय अरबी घोड़े पर सवार एक आदमी देख पड़ा; भेष इसका सिपाहियाना था; उमर में यद्यपि ५० के ऊपर डाँक गया था, पर डीलडौल से ४० के भीतर मालूम होता था। बाल इसके दो-एक कहीं-कहीं पर पक गए थे सही, किंतु उतने से यह किसी को नहीं बोध होता था कि यह तरुनाई से ढुलक चला है। नई उमर का जोश, साहस, हिम्मत और दिलेरी में यह चढ़ती उमरवाले जवानों के भी आगे बढ़ा था, और यही सब बातें मानो साखी भर रही थीं कि कचलपटी और छिछोरपन से यह कहाँ तक दूर हटा हुआ है। पढ़ा-लिखा यह कुछ न था, पर जैसी कुछ मुस्तैदी इसमें देखी जाती थी, उससे स्वामि-भक्ति इसके चेहरे से झलक रही थी। चौकी

छाती और बदन की मजबूती से यह क्षत्रिय मालूम होता था, और डील का न बहुत नाटा था न बहुत लंबा। कुछ ऊँघता अलसाना-सा कागज का एक पुलिंदा हाथ में लिए लंबे-चौड़े पक्के मकान के फाटक पर आकर यह खटखटाने लगा। दासी ने आय किवाड़ खोल कहा—"बाबू सोवत हैं।" इसने कहा—"बड़ा जरूरी कागज है। सोकर उठें, तो यह पुलिंदा उन्हें दे देना।" पुलिंदा दासी के हाथ में पकड़ाय आप चल दिया। दासी ने किवाड़ बंद कर लिया, और भीतर चली गई।

दूसरा प्रस्ताव

"नर की अरु नल-नीर की गति एकै कर जोय;
जेतो नीचो है चलै तेतो ऊँचो होय।"

हिंदुस्तान में अवध का प्रांत भी सदा से प्रसिद्ध होता आया है। पृथ्वी का यह सम भू-भाग अनेक छोटी-बड़ी नदियों से सिंचा हुआ उपज और पैदावारी में और प्रांतों की अपेक्षा आगे बढ़ा हुआ है। यद्यपि बंगाल, बिहार, तिरहुत आदि कई एक और सूबे भी जलप्राय देश होने से अधिक उपजाऊ हैं, किंतु वैसे पुष्ट धान्य, जैसे अवध में उपजते हैं, और प्रांतों में कहाँ! उन-उन प्रांतों की उपज शारदीय अर्थात्

कुँआरी और अगहनी-मात्र है, धरती के अत्यंत निर्बल और अधिक जलमय होने से वासंती अर्थात् चैती फ़सल वहाँ बिलकुल या बहुत कम होती है, और अगहनी में भी ज्वार, बाजरा आदि कई एक प्रकार के अन्न की खेती का तो नाम भी नहीं है। और ठौर जब कि जेठ-बैसाख की तपन और लुह में झुलसकर कहीं हरियाली का लेश भी नहीं रहने पाता, यहाँ तब भी हरिततृण-आच्छादित पृथ्वी मरकतमयी-सी प्रतीत होती है। अवध इक्ष्वाकु और रामचंद्र के समय से बीर बाँकुरे क्षत्रियों का उत्पत्ति-स्थान प्रसिद्ध है। सर्कारी फ़ौज में अब भी बैसवारे के सिपाहियों का दर्जा अव्वल समझा जाता है। पंजाब की लड़ाई में जर्रार सिक्खों के दाँत खट्टे यदि किसी ने किए, तो इन बैसवारेवालों ही ने। अस्तु, इस अवध के इलाक़े में पुण्यतोया सरिद्वरा गोमती के तट पर अनंतपुर नाम का एक पुराना क़स्बा है। यहाँ सेठों का एक पुराना घराना है, जो अपनी क़दामत का पता उस नगर की प्राचीनता के साथ-ही-साथ बराबर देता चला आता है। इस घराने के सेठ लोग पहले दिल्ली के बादशाहों के ख़ज़ानची बहुत दिनों तक रहे, किंतु इधर थोड़े दिनों से समय के हेरफेर से यह ख़ानदान बिलकुल दब गया; और अब सिवा क़िले से बड़े भारी मकान के कोई निशान इस घराने के पुराने

बड़प्पन का बाक़ी न रहा। किंतु इधर हाल में यह ख़ानदान फिर जुगजुगाने लगा, और सेठ हीराचंद, जिनसे मेरे इस कथानक का आरंभ है, बड़े प्रसिद्ध और भाग्यवान् पुरुष हुए, जिन्होंने अपने उद्यम और व्यापार से असंख्य धन-संपत्ति के सिवा बहुत-से गाँव-गिराँव और इलाक़े भी बढ़ाए। नसीबे का सिकंदर यह यहाँ तक था कि इसके भाग से मिट्टी छूते सोना होता था, जिस काम को अपने हाथ में लेता उसे बिना छोर तक पहुँचाए अधूरा कभी नहीं छोड़ देता था। नीति भी है—

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति।

अपने काम में भरपूर लाभ उठाते हुए इसके कृतकार्य होने का कारण भी यही था। स्वयं यह बड़ा विद्वान् न था, न क्रमपूर्वक किसी ग्रंथ का अनुशीलन किए था; पर प्रत्येक विषय के पंडित और विद्वानों के सत्संग में बड़ी रुचि रखता था। इस कारण यह इतना बहुश्रुत हो गया था कि ऐसे-वैसे साधारण योग्यतावाले ग्रंथचुंबकों की इसके सामने मुँह खोलने की हिम्मत नहीं पड़ती थी। पर इससे यह अपनी योग्यता के अभिमान से किसी का अपमान करता हो, सो नहीं। योग्यता के अनुसार सत्पात्र-पात्र का आदर और प्रतिष्ठा

करता था। यहाँ तक कि कोई शिष्ट मनुष्य अपने द्वेष्यवर्ग का भी हो, तो वह रोगी को औषधि के समान उसका महामान्य हो जाता था, और अपना निज बंधु भी अनपढ़ा और दुश्चरित्र हो, तो वह साँप से डसी अँगुली-सा उसे प्यारा न होता था। वरन् वह ऐसे को त्याग देता था—

द्वेष्योऽपि सम्मतः शिष्टस्तस्यार्तस्य यथौषधम् ;
त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता।

उस समय ठौर-ठौर अवध में पाठशालाएँ ऐसों ही की दी हुई वृत्ति से चलती थीं। हमारे यहाँ पंडितों की छात्र-मंडली में उत्तरहा अब तक प्रसिद्ध हैं, विशेष कर यहाँ के वैयाकरण तो एक उदाहरण हो गए हैं। कहावत प्रचलित है—"नैन चैन की चंद्रिका रही जगत् में छाय" इत्यादि। अपव्यय या फिजूलखर्ची से इसे चिढ़ थी। कहा भी है—

इदमेव हि पाण्डित्यमियमेव विदग्धता ;
अयमेव परो धर्मो यदायान्नाधिको व्ययः।

यही पंडिताई है, यही चतुराई है, यही परम धर्म है कि आमद से ज्यादा खर्च न हो।

ऊपरी दिखाव और चटक-मटक से इसे अत्यंत घिन थी, जाहिरदारी को यह दिल से नापसंद करता था। जिस किसी को आमद से जियादह खर्च करते देखता, उसे यह निरा बेईमान

और दिवालिया मानता था, और न कभी ऐसों का अपने किसी काम में विश्वास करता था।

इससे यह मत समझो कि यह महादंभ, वज्र सूम था। काम पड़ने पर यह बेदरेग़ लाखों लुटा देता था, और बेजा एक पैसा भी उठ गया हो, तो उसके लिये दिन-भर पछताता था। जैसा कहा है—

यः काकिणीमप्यपथप्रपन्नां समुद्धरेन्निष्कसहस्रतुल्याम्;
कालेषु कोटिष्वपि मुक्तहस्तस्तं राजसिंहं न जहाति लक्ष्मीः।

कुराह में जाते हुए एक कौड़ी की बचत को जो हज़ार मुद्रा-समान समझता है, वह राजसिंह उचित समय से हज़ारों ख़र्च कर डाले, तो भी लक्ष्मी उसे नहीं त्यागती।

दिन-रात सदा एक ही काम में लगे रहना इसे बहुत बुरा लगता था। सबेरे से साँझ तक ख़ाली तेल और पानी से देह चिकनाते हुए फ़ैशन और नज़ाकत के पीछे जनखा बन केवल अपने आराम और भोग-विलास की फ़िक्र के सिवा और कुछ न करना इसे बिलकुल नापसंद था। न हरदम ख़ाली सुमिरनी फेरना ही इसे भला लगता था, न यह आठों पहर अर्थ-पिशाच बन केवल रुपया ही रुपया अपने जीवन का सारांश मान बैठा था। वरन् समय से धर्म, अर्थ, काम, तीनों को पारी-पारी सेवता था। व्यासदेव के इस उपदेश को अपने लिये इसने शिक्षागुरु मान रक्खा था—

"धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः
यस्त्वेकसेव्यो स नरो जघन्यः"

बुद्धिमान् और सभाचतुर ऐसा था कि ज़रा-से इशारे में बात के मर्म को पकड़ लेता था। केवल एक ही में नितांत आसक्ति न रख धर्म, अर्थ, काम तीनों में एक-सी निपुणता रखने से कभी किसी चालाक के ज़ुल में यह नहीं आता था। संसार के सब काम करता था, पर जितेंद्रिय ऐसा था कि कच्ची तबियतवालों की भाँति लिप्त किसी में न होता था—

श्रुत्वा दृष्ट्वा च स्पृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ;
यो न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः।

व्यापार में इसकी बुद्धि की स्फूर्ति उस समय के रोज़गारियों में एक उदाहरण हो गई थी। नगर-नगर इसकी कोठी, आढ़त और दूकानें इतनी अधिक थीं कि उनका इंतिज़ाम इसी की अथाह बुद्धि का काम था। धर्म में निष्ठा, ब्राह्मण में भक्ति, शक्ति रहते भी क्षमा इत्यादि ऐसे लोकोत्तर गुण इसमें थे कि उनकी उपमा किसी दूसरे पुरुष में ढूँढ़ने से भी मिलना दुर्घट है। अस्तु, लड़के इसके कई हुए, किंतु बहुत कुछ उपाय के उपरांत केवल एक ही जीता बचा। पिता के उसमें एक भी गुण न हुए। इसकी अत्यंत सिधाई और सादापन देख लोग इसे भोंदूदास कहते थे ; पर नाम इसका

रूपचंद था। आशा होती थी, कदाचित् अपनी उमर पर आने से रूपचंद भी पिता के समान गुणागर होते। किंतु ईश्वर का कर्तव्य कुछ कहा नहीं जा सकता, २५ वर्ष की थोड़ी ही उमर में दो पुत्र, एक कन्या छोड़ यह सुरधाम को सिधार गया। सेठ हीराचंद को यद्यपि इसका बड़ा सदमा पहुँचा, किंतु उस दुःख को अपने धैर्यगुण से दबाय उन दो पौत्रों ही को निज पुत्र-समान पालन-पोषण और पढ़ाने-लिखाने लगा, और इतनी धन-संपत्ति पाकर जैसा विनीत भाव और नम्रता अपने में थी, वैसी इन लड़कों में भी हो जाने का प्रयत्न करने लगा।

तीसरा प्रस्ताव

"गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते"

उसी नगर में एक महापुरुष विद्वान् रहते थे। दूर-दूर देश के छात्र और विद्यार्थी इनके स्थान पर पढ़ने के लिये टिके रहते थे। नाम इनका शिरोमणि मिश्र था। गुण में भी यह वैसे ही विद्वन्मंडलीमंडन शिरोमणि के समान थे। अध्यापकी के काम में दूर-दूर तक कालाक्षरी के नाम से प्रसिद्ध थे, अर्थात् काला अक्षर-मात्र शास्त्र का कैसा ही दुरूह और कठिन कोई ग्रंथ होता, उसे ये पढ़ा देते थे। अनुपपन्न, ग़रीब विद्यार्थियों को, जिन्हें यह परिश्रमी, पर सर्वथा असमर्थ

देखते थे, यथाशक्ति उनके गुजरान के लायक़ छात्रवृत्ति भी देते थे। सेठजी इनको बहुत मानते थे, इसलिये कितनों को तो शिरोमणिजी अपने पास से देते थे, और कितनों को सेठ से दिलाते थे। सेठ इनका बड़ा भक्त था, और इन्हें मूर्तिमान् प्रत्यक्ष देवता समझ एक बार दिन-रात भर में इनका दर्शन अवश्य आय कर जाता था। मिश्रजी जैसे श्रुताध्ययन संपन्न वैसे ही सद्वृत्त और सदाचारवान थे। "न केवलया विद्यया तपसा वापि पात्रता", सो इनमें न केवल विद्या ही, किंतु तपस्या भी पूरी थी। स्वभाव के अत्यंत गंभीर और देखने में साक्षात् गणेश की मूर्ति मालूम होते थे। इनका चौड़ा लिलार और दमकती हुई मुख की द्युति दामिनि की दमक के समान देखनेवाले के नेत्र को मानो चकाचौंधी-सी उपजाती थी। इनकी सत्पात्रता का कहना ही क्या। याज्ञवल्क्य लिखते हैं—

कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं विद्याभ्यासेन जीर्यति;
कुलान्युद्धरते तस्य दश पूर्वाणि दशापराणि।

जिसका खाया हुआ अन्न पढ़ने-पढ़ाने की मेहनत से पचता है, वह अपने अगले-पिछले दस-दस पुरखों को तार देता है। सो अध्यापकी में तो यह यहाँ तक परिश्रम करते थे कि चार बजे तड़के से आठ बजे रात तक निरंतर पढ़ाया करते। केवल मध्याह्न में तीन-चार घंटे विश्राम लेते थे।

सबेरे से दस बजे तक भाष्य, वेदांत, पातंजल आदि आर्ष ग्रंथों का पाठ होता था और दूसरी जून काव्य, कोष, व्याकरण, गणित, ज्योतिष इत्यादि का। सिवा इसके जिस जून जो कोई जो कुछ पढ़ने आता था, वह उसे विमुख नहीं फेरते थे। किंतु केवल इतना विचार अवश्य रहता था कि असत शास्त्र या निरीश्वरवादवाले ग्रंथ, जैसा कपिल का दर्शन, पहली जून नहीं पढ़ाते थे। प्रातःकाल के समय जब त्रिपुंड्र और रुद्राक्ष धारण किए कोड़ियों विद्यार्थी अपना-अपना आसन बिछाय संथा लेने को इनकी गद्दी के चारों ओर घेरकर बैठ जाते थे, उस समय यह मालूम होता था, मानो ऋषि-मंडली के बीच पद्मासन पर ब्रह्मा विराजमान हों। उस समय देखनेवाले के चित्त में यही भासती थी कि धन्य है इन विद्यार्थियों को, जो प्रतिदिन, प्रतिक्षण इनके दरस-परस से अपना जन्म सफल करते हैं। सरस्वती भी धन्य है, जो इनके मुख-कमल के संपर्क का सुखानुभव करती हुई ऐसे महात्मा के प्रसन्न, गंभीर और विमल मन-मानस में राजहंसी के समान वास करती है, जहाँ से काव्य, कोष, अलंकार, तर्क आदि अनेक विद्या निकल-निकल नदी के समान प्रवाह-रूप में बहती छात्र-मंडली का कायिक और मानसिक दोनों पाप धोए देती हैं। न केवल विद्या ही के कारण इनकी सब कोई

प्रशंसा करते थे और इनके बड़े मोतक़िद हो गए थे, किंतु अनेक असाधारण लोकोत्तर गुणों से भी। शांति और क्षमा के यह आधार थे; तृष्णालता-गहन-वन के काटने को मानो कुठार थे; अज्ञानतिमिर के हटाने को सहस्रांशु थे; हठ और दुराग्रह आदि महाक्रूर ग्रह के अस्ताचल थे; उदार भाव के उदयगिरि थे; क्षमा और उपशम महावृक्ष के मूल थे; धर्म की ध्वजा, सत्पथ के दिखलानेवाले, शील के सागर, सौजन्य-सुमन के कुसुमाकर थे। किंबहुना, हीराचंद के तो पंडितजी सर्वस्व ही थे। उस प्रांत के छोटे-बड़े सभी ताल्लुक़ेदार इन्हें मानते थे और प्रतिमास असंख्य धन इनकी भेंट भेज देते थे। पंडितजी उस धन में से केवल साधारण भोजन और मोटा-झोंटा कपड़ा पहन लेने के सिवा सब का सब अपने पास पढ़नेवाले विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति में खर्च कर देते थे। लड़का-बाला इनके कोई न था; पर इस बात का इनको कुछ सोच न था, उन विद्यार्थियों ही को अपना पुत्र मानते थे। वरन् पुत्र से अधिक प्रेम उनमें इनका था। उन सबों में दूर देश का एक विद्यार्थी आकर थोड़े दिनों से यहाँ पढ़ने लगा था। यह किस नगर या ग्राम का रहनेवाला था यह कुछ मालूम नहीं; पर बोली इसकी कुछ-कुछ मारवाड़ियों की-सी थी। जो हो, इसके शील-स्वभाव और बुद्धि की तीक्ष्णता

से पंडितजी इस पर यहाँ तक रीझ गए कि इसे अपना पट्टशिष्य मानने लगे। और सब बातों में पंडितजी की अनुहार तो इसमें थी ही, किंतु बोलने में पटु और बर्बर होना, यह एक बात इसमें विशेष पाई गई। पंडितजी अध्यापक बहुत अच्छे थे; किंतु अत्यंत शांतशील होने के कारण शास्त्रार्थ करने में उतने प्रवीण न थे। इसमें दोनों बातें होने से गुरुजी भी इसका विशेष आदर करने लगे। हीराचंद जब पंडितजी के दर्शनों को आते थे, तो उसका वाक्पाटव और पैनी बुद्धि की तेजी देख सेठ प्रसन्न हो जाते थे, और इसके ये गुण हीराचंद के मन में जगह पाते गए। नाम इसका चंद्रशेखर था; किंतु पंडितजी का यह अत्यंत कृपा-पात्र था, इससे यह इसे चंदू कहते थे। सेठ अपने बालकों के लिये ऐसा एक आदमी खोज रहा था, जो उन्हें पढ़ावे तो थोड़ा, पर इधर-उधर की चतुराई की बातें उन्हें सुनावे बहुत। चंदू में यह गुण देख उसी को सेठ ने अपने दोनों पोत्रों के पढ़ाने के लिये नियत कर दिया।

चौथा प्रस्ताव

"यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता;
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।"

धनाधिप राजराज कुबेर का-सा असंख्य धन और देव-राज इंद्र के-से अनुपम ऐश्वर्य के स्वतंत्र अधिकारी अपने दो पौत्रों को छोड़ सेठ हीराचंद सुरधाम सिधार गए। सेठ के प्राण-धन-समान प्यारे पंडित शिरोमणि ने भी इनके वियोग की आग के दाह में आह भरते हुए अपने जीवन को झुल-साना अनुचित मान और सेठ-सरीखे धर्मात्मा को वहाँ भी धर्मोपदेश से सनाथ रखने को इनका साथ दे दिया। 'राजा' और 'बहादुर' का-सा सिर्फ दुलार में पुकारने का नहीं, वरन् वास्तव में अपनी बेइंतिहा विभव की निश्चय दिलानेवाली दुहरी मुहर के समान अपने दो पौत्रों का नाम सेठ ने ऋद्धि-नाथ और निधिनाथ रक्खा था। इनमें ऋद्धिनाथ बड़ा था और निधिनाथ छोटा। करोड़ों का धन अपने अधिकार में पाय अब इन दोनों के नाम की पूरी-पूरी सार्थकता हो गई। शील-स्वभाव और आकृति में दोनों की ऐसी समता पाई जाती थी, मानो वे हीराचंद के सुकृतसागर की सीप के एक-सी आभावाले छोटे बड़े दो मोती हैं, या उसके पुण्य की दो पताकाएँ हैं, या वंश-वृद्धि करनेवाले बीजांकुर-न्याय के दो उदाहरण हैं, या एक ही डंठल के दो गुलाब हैं, या वसंत ऋतु के चैत्र-वैशाख दो महीने हैं। साँचे के-से ढले इन दोनों के एक-एक अंग और रंग-रूप में यहाँ तक तुलना थी कि दाहने गाल

पर एक तिल जैसा बड़े के था, ठीक वैसा ही एक तिल छोटे के गोल कपोल पर भी, चंद्रमा के गोलाकार मंडल में अंक के समान, शोभा दे रहा था। सामुद्रिकशास्त्र में लिखे हुए इनके अंग प्रत्यंग में ऐसे-ऐसे एक-से लक्षणों को देख बोध होता था, मानो ये दोनों जब गर्भ में थे, तभी इनका शुभ-अशुभ भावी परिणाम नियत कर विधना ने इन्हें पैदा किया था। न केवल इन दोनों के शरीर की सुघराहट और बनावट ही में समता थी, वरन् शील-स्वभाव, रंग-ढंग, बोल-चाल, रहन-सहन, सब इन दोनों का एक-सा था। उमर इस समय बड़े की चौदह और छोटे की बारह वर्ष की थी। कुछ दिनों तक ये दोनों बराबर उसी क्रम पर चले गए, जिस क्रम पर सेठ इन्हें रख गया था। चंदू नित्य इनके घर पढ़ाने आता। कभी-कभी यही दोनों उसके घर जाते थे। चंदू इन्हें पढ़ाता तो थोड़ा, पर इधर-उधर की चतुराई की बातें, जो इनकी कोमल बुद्धि में सहज में समा सकें और सोहावनी मालूम हों, बहुत सुनाया करता था। ये भी बड़े शांत और विनीत भाव से उसकी बातें सुनते और गुरु के समान उसका यथोचित आदर करते थे। चंदू की योग्यता और पांडित्य का प्रकाश हम पहले कर आए हैं कि यह पंडितजी का पट्टशिष्य था, और उनके पढ़ाए हुए विद्यार्थियों में सबसे बढ़ा-चढ़ा था; बल्कि

शिरोमणि महाराज के सब उत्तम गुण इसमें देखे गए, अंतर केवल इतना ही पाया गया कि स्वभाव का यह अत्यंत तीक्ष्ण और क्रोधी था, लल्लोपत्तो और ज़ाहिरदारी इसे आती ही न थी, बल्कि ऐसे लोगों पर इसे जी से घिन थी। उन ब्राह्मण और पंडितों में न था कि केवल दूसरों ही के उपदेश के लिये बहुत-से ग्रंथों का बोझ लादे हों, पर काम में पतित महामंद शूद्र से भी अधिक गए-बीते हों। लोभ, कपट और अहंभाव का कहीं संपर्क भी इसमें न था। स्वलाभ-संतोष, सिधाई और जीव-मात्र की हितेच्छा की यह मूर्ति था।

विप्रान् स्वलाभसंतुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान् ;
निरहङ्कारिणः शान्तान् नमस्ये शिरसाऽसकृत् । *

मानो भगवत् के इस श्रीमुखवाक्य का आधार यह था। इसकी चरितार्थता ऐसे ही ब्राह्मणों के विद्यमान रहने से हो रही है। अफ़सोस, यदि समस्त ब्रह्ममंडली, या उनमें से अधिकांश चंदू के समान उन-उन सुलक्षणों से सुशोभित होते, तो इस नई रोशनी के ज़माने में भी इनके विरुद्ध मुँह खोलने को किसी की हिम्मत न पड़ सकती, और न ये सर्वथा पतित

---

* ऐसे ब्राह्मण जो स्वलाभ-संतुष्ट हैं, साधु हैं, प्राणिमात्र के हित चाहनेवाले हैं, अहंकाररहित हैं, शांत स्वभाव के हैं, भगवान् कहते हैं मैं उन्हें बार-बार सिर से प्रणाम करता हूँ।

हो ऐसी गिरी दशा में आ जाते। अस्तु, वे सब उत्तम गुण इसके लिये अवगुण हो गए। साथ के पढ़नेवाले ही इसके गुण-गौरव को न राह इसकी खुचुर में लग गए। यह किसे प्रकट नहीं है कि आपस की नाइत्तिफ़ाक़ी के बीज दूसरे की तरक्क़ी पर जलने ने ही हिंदुस्तान को मुद्दत से कबाब कर रक्खा है। फिर जिस जाति का चंदू है, उसकी तो यह खास खसूसियत-सी होगई है। कहावत है "नाऊ, बाम्हन, धाऊ; जाति देखि गुर्राऊ।" "सिरे की भेड़ कानी" के भाँति ब्राह्मण ही, जो हिंदूजाति का सिरा और हिंदुस्तान के सब कुछ हैं, इस लक्षण के हुए, तो औरों की कौन कहे। चंदू इस बात को जान गया था कि लोग हमसे खार खाते हैं और हमारी खुचुर में लगे हुए हैं, फिर भी अपना कर्तव्य काम समझ उन दोनों बालकों को सिखाने और उन्हें ढंग पर चलाने से यह विमुख न हुआ। इसने सोचा कि हीरा-चंद सरीखे सत्पात्र के घराने की प्रतिष्ठा और भलमन-साहत इन्हीं दोनों के सुधरने या कुढंग होने से बनती या बिगड़ती है। दूसरे, सेठजी का एहसान इस पर इतना अधिक था कि उसे याद कर यद्यपि यह स्वभाव का बहुत सच्चा और खरा था, तो भी इस काम से अलग न हुआ।

अब वर्ष ही दो वर्ष के उपरांत तरुनाई की झलक इन दोनों पर आने लगी। नई-नई तरंगें सूझने लगीं; नई उमर का तक़ाज़ा शुरू हो गया; अमीरी के अल्हड़पन ने आकर जब जगह की, तो उसी तरह के सब सामान इकट्ठे होने की फ़िक्र हुई। एकाएक अज्ञान तिमिर के छा आने पर चाँदनी समान चंदू के उपदेश को प्रकाश पाने का अवसर ही न रहा। असंख्य धन और राजसी वैभव पर अपना स्वतंत्र अधिकार देख दोनों में एक साथ चढ़े हुए दर्पदाह ज्वर की दाह बुझाने को सदुपदेश शीतलोपचार इनके लिये किसी भाँति कारगर न हुआ। बबुआ से बाबू साहब बनने का शौक़ बढ़ा; जी में नई-नई उमंगों का समुद्र उमड़-उमड़ लहराने लगा। सेठ की दौलत पर गीध के समान ताक लगाए बैठे हुए मीराशिकार, भाँड़-भगतिए दूर-दूर से आ जमा होने लगे, ख़ुशामदी, चुटकी बजानेवाले मुफ़्तख़ोरों की बन पड़ी। चंदू की शिक्षा के अनुसार चलने की कौन कहे, उसके नाम की चर्चा भी चित्त में दोनों को बिच्छू के डंक की भाँति व्यथा उपजाने लगी। इनकी पसंद या तबियत के ख़िलाफ़ ज़रा-सा कोई कुछ कहता, तो वह इनका पूरा दुश्मन बन जाता था। चंदू जब इनकी कोई अनुचित बात देखता, उसी दम इन्हें टोक देता और आगे के लिये सावधान हो जाने को चिता देता था।

यह इन दोनों को जहर लगता था और जी से यही चाहते थे कि कौन-सा ऐसा शुभ दिन होगा कि इस खूसट से हमारा पिंड छूटेगा। जो अनंतपुर सेठजी सरीखे विद्यारसिक भोजदेव के मानो नवावतार के समय दूर-दूर से झुंड-के-झुंड नित्य नए विद्वानों के आने-जाने से छोटी काशी का नमूना बना हुआ था, वही अब भाँड़-भगतिए, कत्थक-कलावतों के के भर जाने से लखनऊ और दिल्ली की अनुहार करने लगा। हमारे बाबू साहब को इस बात का हौसला नित-नित बढ़ता ही गया कि जो अमीरी के ठाटबाट हमारे यहाँ हों, वे अवध के बड़े-बड़े नौवाबजादे और तालुक़दारों के यहाँ भी देखने में न आवें। बड़े बाबू का हौसला देख छोटे बाबू साहब क्यों पीछे हट सकते थे? इस तरह दोनों मिल खेत सींचनेवाले दोगले की भाँति सेठ की चिरकाल की कमाई का संचित धन दोनों हाथों से उलच-उलच फेंकने लगे। इस तरह यहाँ अजान लोगों का दल इकट्ठा होते देख और इन दोनों के कुढंग और कुचाल की बढ़ती देख चंदू-सा सुजान अचानक अंतर्द्धान हो गया। पर जी में इसके इस बात की चोट लगी रह गई कि हीराचंद-सरीखे सुकृती की संपत्ति का ऐसा बुरा परिणाम होना अत्यंत अनुचित है।

पाँचवाँ प्रस्ताव

"इक भीजे चहले परे बूड़े बहे हजार;
किते न ऐगुन जग करत नै वै चढ़तीवार।

शिशिर की दारुण की शीत से जैसे सिकुड़े हुए देहधारियों के एक २ अंग वसंत की सुखद ऊष्मा के संचार होते ही फैलने लगते हैं, उसी तरह कुसुमबाण की गरमी शरीर में पैठते ही नव युवा और युवतियों के अंग-प्रत्यंग में सलोनापन भीजने लगता है। तन में, मन में, नैन में नई २ उमंगें जगह करती जाती हैं; एक अनिर्वचनीय शोभा का प्रसार होने लगता है। प्रिय पाठक, नई उमर की मनोहर पुष्पवाटिका की कुछ अकथ कहानी है, इसका ढंग ही कुछ निराला है। हमने वसंत की सुखद ऊष्मा के संचार की सूचना पहले आप को दे दी है। नई-नई कलियों को फूटकर विकाश पाने का स्वच्छंद अवसर इसी समय मिलता है; अत्यंत कटीले और मुरझाए हुए पेड़, जिनकी ओर बाग का माली कभी झाँकता भी नहीं, एक साथ हरे-भरे हो लहलहा उठते हैं। तब उन नए पौधों का क्या कहना, जो नित्य दूध और दाखरस से सींचकर बढ़ाए गए हैं। इस समय, जिसको हमारे यहाँ के कवियों ने वयस्संधि नाम रक्खा है, जिसके वर्णन में कालिदास, भवभूति, श्रीहर्ष, मतिराम, बिहारी आदि

अपनी-अपनी कविता का सर्वस्व लुटाए बैठे हैं, आज हम भी उसी के गुन-ऐगुन देखाने के अवसर की प्रार्थना आपसे करते हैं। हमारे पाठकों में जो सब ओर से लहराते हुए सिंधु समान इस चढ़ती उमर के उफान को, जिसे ऊपर के दोहे में कवि ने नै वै कहा है, खे कर पार हो गए हैं, और अब शांति धरे मननशील महामुनि बन बैठे हैं, वे जान सकते हैं कि यह चढ़ती जवानी क्या बला है और कैसे २ ढंग पर आदमियों को ढुलकाए फिरती है। यह नए २ हौसलों की भूलभुलैया में छोड़ हजारों चक्कर दिलाती है; राग-सागर की तरंगों में तरेर फिर उभड़ने ही नहीं देती। हम ऊपर कह आए हैं कि इन दोनों बाबुओं में न केवल चढ़ती जवानी का जोश उफान दे रहा था, अपिच धन, संपत्ति, प्रभुता और स्वतंत्रता का पूरा प्रादुर्भाव था, जिसके कारण तरल तरंगिणी तुल्य शाकुण्य कुतर्कों ने अत्यंत सहायता पाय इन्हें चारों ओर से अपना ताबेदार करने में लवमात्र भी त्रुटि न की। धनमद ने भी इस नये पाहुने नै वै की पहुनाई के लिये सब भाँति सन्नद्ध हो सत्संग की श्रद्धा को शिथिल कर डाला। अब इन कुचालियों को महात्मा हीराचंद की दिखाई हुई सुराह पर चलना महा जंजाल हो गया। इनके हृदय की आँखों में कुछ ऐसा अनोखा अंधकार

छा गया कि राहु की छाया समान उसका आभास इनके यावत् कामों में प्रसार पाने लगा। झूठी २ बातों से मन को लुभानेवाले खुशामदी चापलूसों के ठट्ट के ठट्ट जमा हो इन्हें अपने ढंग पर उतार लाए। इन्हें इस बात का ज्ञान बिलकुल न रहा कि ये सब अपने मतलब के दोस्त हैं; काम पड़ने पर ये कोई हमारा साथ न देंगे। चिर-काल तक अभ्यसित चंदू के चोखे चुटीले उपदेशों की वासना भी न रही। नए-नए लोग, जिनकी बड़े सेठजी के समय कभी सूरत भी न देख पड़ती थी, वे इनके दिली दोस्त हो गए। इनका रोब और दिमाग़ देख किसी की हिम्मत न पड़ती थी कि इनसे इसके लिये कुछ मुँह पर लावे। पुराने बूढ़ों में से जिसने कभी कुछ कहने का साहस किया वह इनका जानी दुश्मन बन गया। ऐसों का संग करना कैसा, बल्कि उनका नाम सुन चिढ़ उठते थे। ऐसे लोगों से दूर रहना ही इन्हें पसंद आता था। नाच-तमाशे, खेल-कूद, सवारी-शिकारी, पोशाक और घर की सजावट की ओर अजहद शौक़ बढ़ा। दोनों बाबू सदा इसी चेष्टा में रहते थे कि इन सब सजावटों में आसपास के अमीर तअल्लुक़ेदार और बाबुआनों में कोई हमारे आगे न बढ़ने पावे, और इसी चढ़ा-उतरी में लाखों रुपया ठिकरी कर डाला। अपनी खुब-

सूरती, अपनी पसंद, अपनी बात सब के ऊपर रहे। इनके कहने को जरा भी किसी ने दूखा कि त्योरी बदल जाती, मिजाज बरहम हो जाता था। दुर्व्यसन के विष का बीज बोनेवाले चापलूस चालाकों की बन पड़ी। एक चापलूस बोला—"बाबू साहब आप के घराने का बड़ा नाम है; आज दिन अवध के रईसों में आपका औवल दरजा है बड़े सेठ साहब सीधे-सादे बनिया आदमी थे, इसलिये उनको वही सोहाता था। अब आपका नाम बड़े-बड़े तअल्लुक़ेदारों और रईसों में है। आपकी रम-जब्त और इज्जत बहुत बढ़ी है। नित्य का आना-जाना ठहरा, एक न एक तक़रीब, जलसे और दरबार हुआ ही करते हैं। तब आप वैसा सब सामान न कीजिएगा तो किस तरह बाप-दादों की इज्जत और अपने खानदान की बुजुर्गी क़ायम रख सकिएगा?" दूसरा बोला—"जी-हाँ हुजूर बहुत ठीक है, सामान तो सब तरह का इकट्ठा करना ही चाहिए।" तीसरा बोला—"इन सजावटों के लिये लाख-पचास हजार रुपए आपके लिये क्या हक़ीक़त हैं। मैं हाल में लखनऊ गया था, एस० बी० कंपनी की दूकान पर शीशेआलात वग़ैरह का नया चालान आया है। मैं समझता हूँ, आपके कमरों की सजावट के लिये पंद्रह-बीस हजार के शीशे काफ़ी होंगे।" बाबू साहब इन धूर्तों की

चापलूसी पर फूल उठते थे। जिसने जो कुछ कहा, तत्काल उसे मंजूर कर लेते थे। आठ बार, नौ तेवहार लगे ही रहते थे। दिन बाग़-बग़ीचों की सैर, यार दोस्तों के मेल-मुलाक़ात में बीतता था; रात नाच-रंग और ज़ियाफ़तों की धूमधाम में कटने लगी। दिल्ली, आगरा, बनारस, पटना आदि के नामी तायफ़े सदा के लिये अनंतपुर में बुला कर टिका लिए गये। अपने घर का सब काम-काज देखना-भालना तो बहुत दूर रहा, बड़े बाबू साहब को हुंडी-पुरजों पर दस्तख़त करना भी निहायत नागवार होता था। मुनीम और गुमाश्तों की बन पड़ी। सब लोग अपना-अपना घर भरने लगे। इधर ये दोनों हाथों से दौलत को उलच-उलच फेंकते थे, उधर मुनीम-गुमाश्ते तथा और कार्यकर्त्ता, जिनके भरोसे इन दोनों ने सब काम छोड़ रक्खा था, अपना घर भरने लगे। इसी दशा में हीराचंद के सुकृत धन का हाल सौ जगह से रसते हुए घड़े का-सा हो गया, जो देखने में कुछ नहीं मालूम होता, किंतु थोड़े ही अरसे में घड़ा छूंछ का छूछा रह जाता है। सच है—

समायाति यदा लक्ष्मीर्नारिकेलफलाम्बुवत्;
विनिर्याति यदा लक्ष्मीर्गजभुक्तकपित्थवत्।

लक्ष्मी जब आने लगती है, तो नारियल के फल में पानी के समान आती है। भीतर पानी इकट्ठा रहता है, बाहर

किसी को नहीं पता लगता। वही जब जाती है, तो हाथी के खाए कैथे के समान होता है। कैथा समूचा हाथी लीद कर देता है; पर भीतर का गूदा ग़ायब रहता है।

छठा प्रस्ताव

"किमकार्यं कदर्याणाम्"

ग्रीष्म की ऋतु है। जेठ का महीना है। दोपहर का समय है। सब ओर सन्नाटा छा रहा है। तिग्मांशु की तीखी खर-तर किरणों से समस्त ब्रह्मांड तचे लोहपिंड का अनुहार कर रहा है। क्या स्थावर, क्या जंगम, यावत् पदार्थ सब पानी-ही-पानी रट रहे हैं। जिसे छुओ, वही अंगारे-सा गरम बोध होता है, मानो त्वगिंद्रिय शीत-स्पर्श से निराश हो जल में शैत्य गुण का निर्देश करनेवाले (शीतस्पर्शवत्यापः) कणाद महामुनि की बुद्धि का भ्रम मान बैठी है। एक तो अत्यंत दंडायमान दिन, उसमें ललाटंतप चंडांशु के प्रचंड आतप के ताप से संतप्त, शीतलच्छाया का सहारा लिए हुए, यह जंगम जगत् भी स्थिर भाव धारण कर, मौन अवस्था में, दुःखदायी ग्रीष्म के उच्चाटन का मानो मंत्र-सा जप रहा है। जंगम जगत् की इस मौन दशा में कभी-कभी पुराने खँडहरों पर बैठी चील का भयंकर चिकियाना जो कानों को व्यथा

पहुँचा रहा है, सो मानो बीच-बीच उस उच्चाटन मंत्र की सुमरनी पूरी होने का पता देता है। प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ घर-घर सब लोग भोजन के उपरांत विश्राम-सुख का अनुभव कर रहे हैं; नींद आ जाने पर पंखा हाथ से छुट गया है, खुर्राटे भरने लगे हैं। स्त्रियाँ गृहस्थी के काम-काज से छुटकारा पाय दुधमुहे बालकों को खेला रही हैं। कोई-कोई बालक-बालिकाओं को इकट्ठा कर उनके रिझाने की कहानियाँ कह रही हैं। कोई-कोई नवोढ़ा अपनी हमजोली सखी-सहेली को गतरात्रि में अनुभूत प्राणनाथ के प्रेमालाप की कथा सुना रही हैं। कोई-कोई रूपगर्विता बार-बार दर्पन में मुख देख-देख बेश-भूषा की सजावट कर रही हैं। कोई-कोई बड़ी जँगरैतिन गृहस्थी का सब काम शेष होते देख जेठ के दीर्घ दोपहर की ऊब दूर करने को सूप की फटकार से अपने परोसी के विश्राम में विक्षेप डाल रही हैं। हवा के साथ लड़नेवाली कोई कर्कशा न लड़ेगी तो खाया हुआ अन्न कैसे पचेगा, यह सोच अपने परोसियों पर बाण से तीखे और रूखे वचन की वर्षा कर रही है। कोई सरला सुशीला घर की पुरखिन अपनी बहू-बेटियों को एकत्र कर उन्हें अच्छे-अच्छे उपदेश दे रही है। कोई पढ़ी-लिखी एकांत में बैठी तुलसीकृत रामायण या सूर के पदों का अभ्यास कर रही है। कोई कोम-

लांगी अपनी प्यारी सखी को क़सीदा या कारपेट सिखाती हुई परस्पर प्रेमालाप के द्वारा मध्याह्न के निकम्मे घंटों को सफल कर रही है। खेलवाड़ी बालक, जिन्हें इस दोपहर में भी खेलने से विश्राम नहीं है, गप्पें हाँकते हुए दूसरे-दूसरे खेल का बंदोबस्त कर रहे हैं। बँगलों पर साहब लोगों के पदाघात का रसिक पंखाकुली अपने प्रभु के पादपद्म को मानों बारं-बार झुक-झुक प्रणाम करता-सा ऊँघ रहा है; पर पंखे की डोरी हाथ से नहीं छोड़ता। सहिष्णुता और स्वामिभक्ति में दृढ़ सौहार्द इसी का नाम है।

अस्तु, ऐसे समय रंगीन कपड़ा सिर पर डाले अठखेली चाल से एक नौजवान आता हुआ दूर से देख पड़ा। धीमे स्वर से कुछ गाता हुआ चला आ रहा था। ज्यों-ज्यों पास आता गया इसकी पूरी-पूरी पहचान होती गई। पहले इसके कि हम इसका कुछ परिचय आपको दें, यह निश्चय जान रखिये कि चंदू-सरीखे बुद्धिमानों के सदुपदेश के अंकुर का बीजमार करनेवाला अकालजलदोदय के समान यही मनुष्य था। यद्यपि अनंतपुर में सेठ के घराने से इस कदर्य का पुराना संबंध था, किंतु सेठ हीराचंद के जीते-जी इसका केवल आना-जाना-मात्र था। इसके घिनौने काम और दुरा-चार से हीराचंद सदा घिन रखते थे। इस कारण जब-तब

इसे ऐसी फटकार बतलाते थे कि सेठ के घराने से अत्यन्त घिष्ट-पिष्ट रखने की इसकी हिम्मत न होती थी। पाठकजन, यह सेठजी के पूज्य पुरोहित के घराने का था। नाम इसका बसन्तराम था; पर सब लोग इसे बसन्ता-बसन्ता कहा करते थे। नाक फसड़ी, होठ मोटे, आँख घुच्चू-सी, माथा बीच में गड्ढेदार, चेहरा गोल, रंग काला मानो अंजन-गिरि का एक टुकड़ा हो। पढ़ना-लिखना तो इसके लिये "काला अक्षर भैंस बराबर" था। जब यह मा के गर्भ में था, तभी इसके बाप ने यमपुर की राह ली। केवल नाम-मात्र के ब्राह्मण इन पुरोहितों की पहले तो सृष्टि ही निराली होती है कि पुरोहिती कर्म से जीनेवाले सौ-पचास इकट्ठे किये जायँ तो बिरले एक-दो उनमें ऐसे निकलेंगे जो आवारगी, उजड्डपन और छिछोरेपन से खाली होंगे। विद्या, गुण अथवा किसी प्रकार की योग्यता का तो ज़िक्र ही क्या, उनमें साधारण रीति की मनुष्यता ही हो तो मानो बड़ी कुशल है। तब इस रण्डा पुत्र का कहना ही क्या! इस अभागे को तो जन्म ही से कोई कुछ कहने-सुननेवाला न था।

एकेनापि कुपुत्रेण कोटरस्थेन वह्निना;
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा।

कुपुत्रों में भी यह उस तरह का कुपूत न था कि खोकर

में रक्खी आग के समान केवल अपने ही कुल को भस्म करे, अपित्र जहाँ-जहाँ इसकी थोड़ी भी पैठ या संचार हो गया, वहाँ-वहाँ इसने भरपूर अपना-सा उस घरानेवालों को कर दिखाया। यह सदा इसी ताक में रहा करता था कि किस घराने में कौन-कौन नए केड़े हैं। उन्हें किसी-न-किसी तरह अपने ढंग पर चढ़ाय ख़ातिरख़ाह गुलछर्रे उड़ाया करता, जब देखा अब यहाँ कुछ सार न रहा, तो निर्गन्धोज्झित पुष्प के समान उसे त्याग भ्रमर के समान दूसरा ठौर ढूँढने लगता। इस क्रम से इसने न जानिए कितने कुलप्रसूत नई उमर-वालों का शिकार कर अमीरशिकारी के फ़न में पूरा उस्ताद हो रहा था। इन बाबुओं को तो इसने ऐसा फँसा रक्खा था कि इसके बिना उन्हें एक दम चैन न पड़ती, मानो दोनों बाबुओं का यह बसन्ता सर्वस्व हो गया था। और यह ऐसा चालाक था कि जिस ढंग पर चाहता काठ के खेलौने के माफ़िक़ दोनों को ढुलकाता फिरता। हम पहले लिख आए हैं कि यह पढ़ा-लिखा न था तब हबशियों के से इसके मोटे-मोटे होठों पर बड़े-बड़े और चौड़े दाँतों को देख "क्वचिद्दन्ता भवेत् मूर्खः" सामुद्रिक के इस लक्षण में क्वचित् शब्द की चरितार्थता मानो इसी के लिये रक्खी गई थी; बड़े दाँत-वाले कोई मूर्ख देखे गए तो यही। दूसरे इसकी कंजी आँख

साखी दे रही थी कि कदर्य्यता इसमें किस दर्जे तक पहुँची हुई है। पाठक, आप बसन्ता से भरपूर परिचय कर रखिए, अभी आप को इससे बहुत काम पड़ना है; क्योंकि हमारे इस क़िस्से के कई एक नायक प्रतिनायकों में चन्दू का प्रतिनायक यही होता रहेगा। चन्दू-सा सुपात्र भलामानुस और बसन्ता के समान नटखट कुपात्र कहीं विरले पाओगे। हम ऊपर सूचित कर आए हैं कि तमाशबीनी पर कमर कसे इन बाबुओं के कारण बारवनिताओं के अधिक संघट्ट से अनन्त-पुर इस समय दिल्ली, लखनऊ का नमूना बन गया था। बसन्ता को बाबुओं का तन-मन समझ सब ही बारविला-सिनी इसकी ख़ुशामद में लगी रहती थीं। यों बाबू साहब बरायनाम काठ के उल्लू बनाकर थाप दिए गए थे, असल में मानो हीराचंद का वलीअहद यही बन बैठा था, और उनके धन का सब सुख भोगनेवाला यही अपने को मानता था। ऐसे दोपहर के समय यह क्यों घर से निकला और क्या इसका मनसूबा था, इसका रहस्य जानने को कौन न उकताता होगा; किंतु सहसा किसी रहस्य का उद्घाटन उपन्यास-लेखकों की रीति के विरुद्ध है, इससे इस प्रस्ताव को यहीं समाप्त करते हैं।

सातवाँ प्रस्ताव

"सन्ततिः श्लाघ्यतामेति पितृणां पुण्यकृद्भिः"

अनन्तपुर से ईशानकोण के दो कोस पर, एक मठ था। यह मठ किसी प्राचीन देवस्थान में हो, इसका कहीं से कुछ पता नहीं लगता; क्योंकि किसी पुराने लेख, इतिहास या पुराण में इसकी कहीं चर्चा नहीं पाई गई। किन्तु साथ ही इसके यह भी कोई नहीं जानता कि कबसे इस मठ की पूजा और मान आरंभ किया गया; न यही कोई बता सकता है कि किस बड़े सिद्ध या महात्मा का यह आश्रम या तपोभूमि है। इस मठ में किसी देवी-देवता की मूर्ति न थी; न इसके समीप आसपास कोई कुंड, देवखात, नदी, झरने आदि थे, जिससे हम इसे कोई पुराना तीर्थ कह सकें। इस मठ का कुल हलका पौन कोस के गिर्द में था। चारों ओर से लहलहे सघन वृक्षों की शीतल छाया और ठौर २ लताओं से छाए हुए कुंजों की रमणीयता मन को हरे लेती थी। ग्रीष्म का सन्ताप और जाड़े की कपकपी कभी वहाँ नाम को भी न व्यापती थी। बरसात के पानी का एक अच्छा लहरा घने वृक्षों की छाया में एक साधारण-सी बूँदाबाँदी मालूम होती थी। बोध होता है, मानों ये सब विटप और लताएँ वर्षा, वात, शीत, आतप के निवारक इस मठ के लिये एक

क़ुदरती छाता बन गए हैं। हम ऊपर लिख आए हैं कि वहाँ कोई देवमन्दिर या किसी देवता की प्रतिमा स्थापित न थी जिससे तीर्थ होने का कोई चिह्न वहाँ प्रकट होता हो; किन्तु तपोभूमि सदृश उस स्थान का माहात्म्य ऐसा देखा जाता था कि वहाँ पहुँचते ही मन में सतोगुण का भाव आप से आप उदय हो आता था। मन कैसा ही उदासीन और मलीन हो वहाँ जाने से प्रसन्न और प्रफुल्लित हो उठता था। इस आश्रम का मुख्य स्थान कई एक पुराने-पुराने वट वृक्षों के बीच एक मढ़ी-सी थी, जिसके भीतर गज भर का लम्बा-चौड़ा और आधा गज ऊँचा एक पक्का चबूतरा-सा बना था। यात्री या ज़ियारत करनेवाले उसी चबूतरे की पान, फूल, मिठाई इत्यादि से पूजा करते थे। दस-बीस कोस के गिर्द में यह स्थान ऐसा प्रसिद्ध था कि दूर-दूर से लोग यहाँ मानमनौती करने आते थे। इस चबूतरे के एक ओर एक धूनी-सी थी, जिसमें रात-दिन गुग्गुल, लोबान और चन्दन की लकड़ी सुलगा करती थी। लोग कहते हैं यह अग्नि यहाँ द्वापर के अन्त से आज तक नहीं बुझी, और अर्जुन ने जब खाण्डव वन जलाया था, तो उसकी परिशिष्ट अग्नि लाकर यहीं स्थापित कर दी, और प्रलय काल में जब महादेवजी के तीसरे नेत्र से अग्नि निकल

कर सम्पूर्ण विश्व को भस्मसात् करेगी, उसी में यह धूनी की आग भी मिलकर शिव की नेत्राग्नि को दोचन्द भड़का देगी। इस मठ के पण्डे या पुजारी थोड़े-से जटाधारी काले-काले योगी या गुसाईं लोग थे। वे ही यहाँ प्रधान या मुखिया थे। जो कुछ इस मठ में चढ़ता था, वह सब इन्हीं लोगों में बँट जाता था। आवारगी, उजड्डपन और असत् व्यवहार में ये गुसाईं भी और और पंडे तथा तीर्थलियों से किसी बात में कम न थे। इस स्थान के पुरातन और पवित्र होने में कोई संदेह नहीं; किंतु इन अपढ़ योगियों का दुराचरण देख घिन होती थी, और यह मठ यहाँ तक बदनाम हो गया था कि बहुत-से भलेमानुस शिष्ट जन वहाँ आना या साल में जो कई मेले इस मठ के हुआ करते थे उनमें शरीक होना मर्यादा के विरुद्ध समझते थे। बैशाख और जेठ, दो महीने के प्रति मङ्गलवार को यहाँ बड़ी भीड़ होती थी; हजारों आदमी आस-पास के गाँव और नगर के यहाँ आते थे। सैकड़ों दुकानें लगती थीं। सबेरे से दस बजे रात तक इस मेले का ठाट रहता था।

हम अपने पाठकों को इसके पहले एक नये आदमी का परिचय दे चुके हैं, जो, दोनों बाबुओं का मानो जीवनसर्वस्व था, जिसके बिना एक क्षण उन्हें कल न पड़ती थी, और बाबुओं को इसके चंगुल में देख भीड़ की भीड़ ओछे-छिछोरे इसकी खुशा-

मद में लगे रहते थे। उन्हीं में इस मठ के बहुत-से योगी भी थे। इसलिये इस मठ में तो मानो वसंतराम का राज्य सा था। जो-जो अत्याचार यहाँ आकर यह कर गुजरता था, वे बुरे तो सब को लगते थे, कई एक बूढ़े-बूढ़े गुसाईं तो लहू का घूँट पीकर रह जाते थे, पर उन बाबुओं के मुलाहिजे से कुछ न कहते थे। यद्यपि ऐसे-ऐसे छिछोरों के दुःसंग से इन दोनों बाबुओं की भी सब क़लई दिन-दिन खुलती जाती थी और सन्मान जैसा औवल दरजे के रईसों को मिलना चाहिये, उसमें भले लोगों के बीच नित्य-नित्य कमी होती जाती थी, तो भी पुराने सेठ सुकृती हीराचंद की पहली बातों को याद कर सभी चुप रह जाते थे। क्या अचरज, इन गुसाइयों को भी हीराचंद ही की भलमनसाहत का खयाल आ जाता हो, जिससे ये लोग बसंता तथा इन बाबुओं का अनेक तरह का उपद्रव मठ के मेलों में देखकर भी चुप रह जाते थे। जो हो, हम प्रस्तुत का अनुसरण करते हैं।

एक बूढ़ा ब्राह्मण—"हाय-हाय, हाँफते-हाँफते कण्ठगत प्राण आ रहा है। झूठ कहते हों तो हमारे सात पुरखा नरक में गिरें। न जानिये, आज किस कुसाइत में घर से निकले कि हाथ गरम होना कैसा एक फूटी झंझी से भी भेंट न हुई। भीड़ और हुल्लड़ के घिसंघिस्सा में अंग चूर-चूर हो गए। भला

बचकर किसी तरह से बाहर निकल आये मानो लाखों भर पाए। क्या कहते हो, 'तो क्यों आया।' अरे न आवें, तो क्या करें। एक तो ग़रीब दूसरे बड़ा कुनबा। अब भी क्या हीराचंद-से दानी और पात्रापात्र का विवेक रखनेवाले बैठे हैं, जो हम ऐसों की दीनता पर पिघल उठेंगे? ईश्वर इनका सत्यानाश करे, न जानिये कहाँ-कहाँ के ओछे-छिछोरे इकट्ठे हो गये कि हमारे बाबुओं को कुढंग पर चढ़ाय बिगाड़ डाला। सेठ के समय तो हम किसी के आगे हाथ पसारना कैसा, घर के बाहर कभी पाँव भी नहीं रखते थे। वही अब तुच्छ-से-तुच्छ आदमियों के सामने दिन भर गिड़गिड़ाते फिरते हैं, तब भी साँझ को अच्छी तरह पेट भर अन्न नहीं मिलता। आज इस मठ का मेला समझ आये थे कि किसी से दो-चार पैसे पा जायँगे, सो इस अमंगा का सत्यानाश हो, पास का भी जो कुछ आज कमाया था, सब खो चले, और तन का एक-एक कपड़ा, देखो, चिरकुटी हो गया। बचा को खूब पूजा भी की गई, जनम भर याद रहेगा। अरे यह कहो, न जानिये किसकी पुन्याई सहाय लगी कि दोनों बाबू सँभलकर निकल भागे, नहीं तो सब इज्जत खाक में मिल जाती। और, कब तक बचे रहेंगे? यही लच्छन है, तो एक दिन बढ़ई का हाथ गया दाखिल है। बकरे की मा कब तक खैर मनावेगी? हा! सोने का घर खाक में मिला

जाता है। क्या कहते हो, 'बड़े सेठ बाबुओं को तो चंदू के हाथ में सौंप गये थे।' हाँ, हाँ सौंप तो गये थे, पर कण्टकरूप दुष्टों के रहते जब उस बेचारे की कुछ चलने पाती ? लाचार हो वह भी छोड़कर चला गया। चंदू-से गुनी, सुशील, भले-मानुष की तो जहाँ तक तारीफ़ की जाय, सब कम है। उस के सुयश की सुगंधि के सामने बूढ़े बाबा ऋद्धिनाथ इन महाराज को हम लोग भूल ही गये थे। धिक्! नराधम! पापी! कर्म-चांडाल! तेरा इतना साहस कि तूने भले घर की बहू-बेटियों का सतीत्व नष्ट करना अपने लिये मोद और दिलबहलाव समझ लिया था। हा-हा-हा! बचा पर खूब पड़ी; स्त्रियों का भेख धर कैसा बहूबेटियों में जा मिला था। पूजा भी हुई, और अब पुलिस के चंगुल में पड़ गया है। वे लोग सब तके हुई हैं, बसंतवा से भरपूर दाँव लेंगे। सच है, बुरे काम का बुरा अंजाम। दोनों बाबू भी बसंता की इस दुष्ट अभिसंधि में अवश्य थे। कुशल हुई, जो इन्हें भी इसमें फँसते देख एक आदमी इनको उस भीड़ से किसी तरह अलगकर गाड़ी पर चढ़ाय ले भागा। यह आदमी कौन था, मैं अच्छी तरह न पहचान सका; पर मुझे दूर से चंदू का-सा चेहरा उसका मालूम हुआ। जो हो, अब हम भी घर जायँ।"

आठवाँ प्रस्ताव

"कोयला होय न ऊजरो सौ मन साबुन लाय।"

यद्यपि इन दोनों भावुओं की आँख का पानी ढरक गया था, शरम और हया को पी बैठे थे, कार्य-अकार्य में इन्हें कुछ संकोच न रहा, धृष्टता, अशालीनता और बेहयाई का जामा पहन सब भाँति निरङ्कुश और स्वच्छंद बन गये थे; पर उस दिन इनका पुलीस के घेरे में आ जाना और बसंता के साथ इनकी भी लेव-देव करने पर लोगों की ताक देख दोनों कुछ-कुछ सहम-से गये, और मन ही मन अपनी कुचाल पर क़ायल होने लगे। वह आदमी, जिसे हम सौ अजान में एक सुजान कहेंगे, और जो इन दोनों को भीड़ से बाहर निकाल लाया, जिसका पूरा परिचय हम अपने पाठकों को दे चुके हैं, उसने इन्हें घर पहुँचाय इनसे बिदा माँगी। ये दोनों अत्यंत लज्जित थे। आँख इसके सामने न कर सके। सिर नीचा किये घर तक गाड़ी पर बैठे चले आये। गाड़ी से उतरते भी इनकी कुछ बोलने की हिम्मत न होती थी; किंतु उनके उस समय के हृद्गत भाव से प्रकट होता था कि ये दोनों उस महात्मा सुजान के बड़े एहसानमंद हैं। इन्हें अत्यंत लज्जित और बुझामन देख वह बोला—"बाबू, तुम कुछ मत डरो, न किसी तरह का संकोच मन में लाओ। बीती

बात का अब विचार ही क्या ? "गतं न शोचामि ।" आगे के लिए सँभलकर चलो । अभी कुछ बिगड़ा नहीं, सबेरे का भूला साँझ को घर आवे, तो उसे भूला, न कहेंगे । अब इस समय तो रात हो गई, थके-थकाये हो, जाओ, खा-पीकर आराम करो । कल सबेरे मैं तुम्हारे यहाँ फिर आऊँगा ।" यह कह उसने अपने घर की राह ली ।

अब नित्य के आनेवाले सन्नाटा पाय लौटने लगे । कोई कहता था—"आज क्या सबब, जो बाबुओं के बैठने का कमरा बंद है । बसंता भी नहीं देख पड़ता । बाबुओं को भगवान् सलामत रक्खे, हम लोगों की घड़ी-दो घड़ी बड़े चैन और दिल्लगी में कटती है । हम लोग यहाँ बैठ कितना हल्लागुल्ला और धौलधक्कड़ किया करते हैं ; पर बाबू साहब कभी चूँ नहीं करते ।" दूसरे ने कहा—"सच है, रियासत के माने ही यह हैं । इस समय अब इस दयार में तो दूसरा ऐसा रईस नहीं है । हरकसेबाशद कोई आवे, यहाँ से आज़ुर्दा न लौटेगा ।" तीसरे ने कहा—"सच है, इसमें क्या शक । बाबुओं की जितनी तारीफ़ की जाय, सब जा है । पर यार बसंता भी बड़ा बे-नज़ीर आदमी है । यह सब उसी के दम का चहूरा है । जब से बसंतराम का अमल-दखल हुआ, तब से हम लोगों ने भी इस दरबार में जगह पाई । बकी बात, मनहूस क़ायम

उस पंडत का तो पैरा उड़ा। बसंता ही ऐसा था, जिसने हजार-हजार कोशिशों के बाद बाबुओं को उसके चंगुल से छुड़ाय आजाद किया। न जानिये कहाँ का मरा बिलाना कुंदनालधाशा इस दरबार में आ भिड़ गया था।"

इधर इन दोनों सेठ के लड़कों में बड़े को, जिसे छोटे की अपेक्षा कुछ-कुछ समझ आ चली थी, मन में भाँति-भाँति का हरन-गुनन करते टाइमपीस पर घंटा और मिनट गिनते नींद न पड़ी। रात भोर हो गई; चिड़िया चहचहाने लगीं; स्कूल के पढ़नेवाले परिश्रमी बालक ब्राह्मी वेला समझ अपना-अपना पाठ घोख-घोख सरस्वती देवी का अनुशीलन करने लगे। प्रत्येक घरों में वृद्धजन समस्त दिन के कल्याणसूचक हरि के पवित्र नामोच्चारण में तत्पर हो गये; कामी जन रात भर कामकेलि में बिताय सबेरे की ठंडी हवा पाय चौगुना खुर्राटा भरने लगे; चण्डूखानों में अफीमची और चण्डूबाजों की रात भर की पार्लियामेंट के बाद पीनक की सुखनींद का प्रारंभ हो गया; आस-पास मंदिरों में मंगला-आरती के समय का सूचक घड़ियाली और शंख-शब्द सुन भक्त जन जय-जय कहते दर्शन के लिये दौड़े; फेरीवाले भिखमंगे भोर ही अलापते गलियों में घूमने लगे; पौफट होते ही अपनी प्रेयसी निशा नायिका का वियोग समझ चंद्रमा के मुख पर उदासी छा गई। जैसे-जैसे के

सब साथी होते हैं, बिगड़े समय कोई साथ नहीं देता, मानो इस बात को सिद्ध करते हुए अपने मालिक चंद्रमा को विपत्ति में पड़ा देख नमकहराम नौकर की भाँति तारागण एक-एक कर ग़ायब होने लगे; अथवा काल कैवर्त ने आकाश महा-सरोवर में निशारूपी जाल बड़ी दूर तक फैलाय जीती हुई मछली की भाँति सबों को एक साथ समेट लिया; अथवा यों कहिये कि सूर्य लक्का कबूतर की तरह अपनी काबुक से निकलते ही चावल की बड़ी-बड़ी किनकी-से इन तारों को एक-एक कर सबों को चुग गया; अथवा प्रातःसंध्या अपने रक्तोत्पल-सदृश हाथ को सब ओर फैलाय-फैलाय अपनी प्रिय सखी वासरश्री का उसके कांत दिनमणि सूर्य से मिलने का समय जान, इन तारा मौक्तिकों का हार उसके लिये गूथने को इन्हें इकट्ठा कर रही है। अपने विजयी प्रभाकर की विजय-पताका समान सूर्योदय की लाली सब ओर दिशा-विदिशाओं में छा जाते ही अंधकार का हृदय-सा मानो फट सौ-सौ टुकड़े हो गया। शनैः-शनैः उदयाचल बालमंदार के फूलों का गुच्छा-सा, अथवा पूर्व दिगंगना के लिलार पर रोली का लाल बेंदा-सा, या उसी के कान का कुण्डल-सा, या आसमान गुंबज पर सोने का कलश-सा, अथवा देवांगनाओं के मस्तक का शीश-फूल-सा, अथवा चराचर विश्वमात्र को निगल जानेवाले काल

महासर्प का अंडा-सा सूर्य का मंडल कमल के वन को प्रफुल्लित करता हुआ, चक्रवाक के विरहाग्नि को बुझाता हुआ, जंगम जगत्मात्र के नेत्रों को प्रकाश पहुँचाता हुआ, श्रोत्रिय धर्मशील ब्राह्मणों को संध्या और अग्निहोत्र आदि कर्म में प्रवृत्त करता हुआ पूर्व दिशा में सुशोभित होने लगा।

सब लोग अपने-अपने रोजमर्रे के काम में प्रवृत्त हुए। बाबू भी रात भर जागने की खुमारी में अलसाने से शौचकर्म और दतून कुल्ला से फारिग हो अपने कमरे में आ बैठे। किन्तु आज रोज का सा इनका चेहरा खुश न था। देखते ही भासित हो जाता था कि चित्त में इनके कोई गहरी चोट का धक्का लग गया है। नौकर चाकर तथा और सब लोग जो इनके पास नित्य के आनेवाले थे इन्हें उदास और बुझामन देख मन ही मन अनेक तरह के तर्क-वितर्क करने लगे। पर इनकी उदासी का कारण न जान सके।

इसी समय चन्दू दूर से आता हुआ। देख पड़ा। परिख-लाई, नेकचलनी और पल्ले सिरे का खरापन इसके चेहरे पर झलक रहा था। इसकी गंभीरता और सागर समान गुण-गौरव में स्वच्छ उदार भाव मानो लहरा रहा था। इन बाबुओं की भलाई और खैरख्वाही इसे दिल से मंजूर थी। लल्लोपत्तो खुशामद और सुमाहसा की जरा भी गुंजाइश इसके मिजाज

में न पाय दुनियादारों की इसके सामने कुछ न चलती थी। जो लोग बाबुओं को फँसाय अब तक बेखटके लूट-मार खा-पी रहे थे, उनके जी में खलबली पैठ गई। कानोंकान कहने लगे—"क्या है, जो यह मनहूस-क़दम आज फिर यहाँ देख पड़ा। इसके सामने अब हम लोगों की एक भी न चलेगी। बड़ी मुशाकिलों से इसका पैरा यहाँ से बह गया था। क्या सबब हुआ, जो बाबुओं को आज इसकी फिर चाह हुई ?"

चंदू को आता देख बाबू उठ खड़े हुए। इसके पाँव छू, हाथ पकड़ अलग कमरे में ले गये, और मना कर दिया कि यहाँ कोई न आवे। यहाँ बैठ इधर-उधर की दो-एक और बातें कहने के उपरांत चंदू बोला—

"बाबू, अब तुम्हें इन साथियों की परख हुई होगी। ये सब अपने मतलब के यार हैं, तुम्हें सब तरह पर बिगाड़ अपने-अपने घर बैठेंगे। सपूती के ढंग से बड़े सेठजी के दिखाये पथ पर जो अब तक तुम चले गये होते, तो तुम्हारे सुयश की सुगंधि संसार में चौगुनी फैलती। सभ्य समाज और बड़े लोगों में प्रतिष्ठा और इज्जत पाते; धन-संपत्ति भी चंद्रमा की कला समान दिन-दिन बढ़ती जाती। बाबू, मैं जी से तुम्हारा उपकार और भला चाहता हूँ; किंतु जब मैंने अपनी ओर तुम्हारी अश्रद्धा और अरुचि देखी, तो अलग

हो गया। अस्तु, अब भी तुम चेतो और अपने को सँभालो अभी कुछ बहुत नहीं बिगड़ा। सेठजी के पुण्य-प्रताप से तुम्हें कमी किस बात की है? बाबू, तुम ऐसे निरे मूर्ख भी नहीं हो, जो अपना भला-बुरा न समझ सकते हो। किंतु तुम भी क्या करो, यह नई जवानी का मदरूप अंधकार ऐसा ही होता है, जो नसीहत और उपदेश की सहस्रदीपावली की जगमगाहट से भी दूर नहीं हो सकता। इस उमर में जो एक प्रकार की ख़ुदी सवार हो जाती है, जिसे दर्पदाहज्वर की गरमी कहना चाहिये, वह सैकड़ों शीतोपचार से भी नहीं घट सकती। विष-समान विषयास्वाद से उत्पन्न मोह ऐसा नहीं होता कि झाड़-फूँक और टोना-टनमन का कुछ असर उस पर पहुँचे।

"इस चढ़ती जवानी में यदि कहीं ईश्वर का दिया भोग-विलास का सब सामान और मनमानी धन-संपत्ति मिली, तो शिक्षा, विज्ञान, चातुरी और फ़िलासफ़ी सब उलटा ही असर पैदा करती हैं। उपदेश और विद्याभ्यास, दोनों इसीलिये हैं कि आदमी को बुरे कामों की ओर से हटाय भले कामों में लगावें। यह एक प्रकार का ऐसा स्नान है, जो शरीर के नहीं, वरन् मन के मैल को धोकर साफ़ कर देता है। इस पुनीत तीर्थोदक में एक बार भी जिसने भक्ति-श्रद्धा से स्नान किया,

वह जन्म भर के लिये शुद्ध और पवित्र हो जाता है। और, इस तीर्थोदक से स्नान का उपयुक्त समय यही था। सेठजी-से बुद्धिमान् यह सब सोच-समझ तुम्हें मेरे सिपुर्द कर आप निश्चिंत हो बैठे थे। मैंने पहले ही कहा कि श्रद्धा इसके लिये पहली बात है। जब उसमें कमी देखी गई, तो मैं अलग हो गया। फिर भी सेठजी का पूर्व-उपकार समझ जी न माना, इसलिये आज फिर मैंने तुम्हें एक बार और चिताने का साहस किया। आशा है, अब आप मेरे इस कहने पर कान देंगे, और अपने काम-काज में मन लगावेंगे।

"तुम्हें चाहिए कि तुम ऐसे ढंग से चलो कि भले मनुष्यों में तुम्हारी हँसी न हो; बड़े लोग तुम्हें धिक्कारें नहीं; तुम्हारे हितैषी तुम्हारा सोच न करें; धूर्त भाँड़-भगतिए तुम्हें ठगें नहीं; चतुर सुजान तुम्हारा निरादर न करें; ख़ुशामदी लोग अपने कपट-जाल में तुम्हें फँसाय शिकार न बनावें; ओछे और दुष्टों की सोहबत से दूर हटते रहो। बुद्धिमान् लोग कह गये हैं—

नाक जाय अरु आफ़त आय ;
द्रव्य बचा के राखो लाज।

"यह मत समझो, सेठजी की कमाई सदा ऐसी ही स्थिर बनी रहेगी। बराबर ख़र्च करते रहो, और उसमें मिलाओ

कभी कुछ नहीं, तो असंख्य धन भी नहीं रह जाता। और भी कहा है—

घर का ख़र्च देखा करो ;
भारी देखो, हलका करो।

"बाबू, अभी तुम्हें नहीं मालूम होता, पीछे पछताओगे। चिकने मुँह के ठग की भाँति इस समय सभी तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाते हैं। पीछे तुम्हारी छाया तक बरकाने लगेंगे। कहावत है—'छूछा, तोहिं को पूछा ?'

सिहीदस्ती भी चलाती है कहीं अच्छी चाल ;
ख़ाली थैली न खड़ी होगी कभी लक्खों साल।

'मन नहिं सिंधु समाय।' इस मन की उमंग को बढ़ाते क्या लगता है। एक बात में ज़रा-सा तरहदारी और अच्छे-पन का दख़ल भर होना चाहिये। अच्छी धोती को अच्छा अँगरखा, अच्छी पगड़ी न होगी तो सजावट और तरहदारी कोसों दूर भगेगी। जब अच्छा दुशाला हुआ, तो मोतियों की माला क्यों न हो। नफ़ीस पोशाक के लिये नफ़ीस सवारियाँ भी होनी ही चाहिये। जब सवारी हुई, तो दस-पाँच यार-दोस्त क्यों न हों ? अब खान-पान, लेन-देन सब उज्ज्वल होने की ओर ख़्याल दौड़ा। तात्पर्य यह कि एक बात में भी जहाँ ज़रा-सी तरहदारी और अच्छेपन को जगह दी

गई कि वह रुई की आग हो जाती है। किसी ने सच कहा है—

एक शोभा के लिये मन मारा ;
सो किया अनेक पीड़ा से निस्तारा।

"बाबू, तुम समझते हो सदा दिन ही रहेगा, रात कभी हो ही गी नहीं। बड़े सेठ साहब कितनी मेहनत और उद्योग से तुम्हारे लिये कुबेर की-सी संपदा संचित कर गये हैं। तुम्हारी सपूती इसी में है कि तुम उसे बनाये रहो। तुम कहोगे, यह जाति का दरिद्र ब्राह्मण अमीरी की कदर जाने क्या! पर मैं कहता हूँ, वह अमीरी किस काम की, जिससे पीछे फ़क़ीरी झेलनी पड़े। सच है—

धनवन्तों के घर के द्वार ;
सब सुख आवैं बारम्बार।
जिसके आंटे पैसा हाथ ;
उसका देवैं सब कोई साथ।
उद्योगी के घर पर अड़ा ;
लक्ष्मी झूमैं खड़ी-खड़ी।

"धनी के पास सब आते हैं, वह किसी को ढूँढ़ने नहीं जाता। कहा है—

प्यासा ढूँढ़ै मीठा कूप ;
कूप न ढूँढ़ै प्यासा भूप।

"बाबू, मैंने यावत् बुद्धिबलोदय तुम्हें चिताने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। मानना-न मानना तुम्हारे अधीन है—

स्याने को ज़रा इशारा; मूरख को कोड़ा सारा।"

यह कह चन्दू उठ खड़ा हुआ। बाबू ने बड़ी नम्रतापूर्वक प्रणाम किया। चन्दू आशीस दे घर की ओर चम्पत हुआ। कुछ दिन तक इसकी नसीहत का बाबू पर बड़ा असर रहा और ठीक-ठीक क्रम पर चला किया। अन्त को हज़ार मन साबुन से धोते रहो, वही कोयले का कोयला।

नवाँ प्रस्ताव

"चार दिना की चाँदनी फिर अँधियारा पाख।"

चन्दू के उपदेश का असर बड़े बाबू पर कुछ ऐसा हुआ कि उस दिन से यह सब सोहबत-संगत से मुँह मोड़ अपने काम में लग गया। सबेरे से दोपहर तक कोठी का सब काम देखता-भालता था, और दोपहर के बाद दो बजे से इलाक़ों का सब बन्दोबस्त करता था। वसूल और तहसील की एक एक मद ख़ुद आप जाँचता था। उजड़े असामियों को दिलासा दे और उनकी यथोचित सहायता कर फिर से बसाता था, और जो कारिन्दों की गफ़लत से सरहंग हो गये थे, उन्हें दबाने और फिर से अपने क़ब्ज़े में लाने की फ़िक्र

करता था। सुबह-शाम जब इन सब कामों से फुरसत पाता था, तो गृहस्थी के सब इन्तिज़ाम करता था। भाई-बिरादरी, नाता-रिश्ता तथा हवेली में किस बात की ज़रूरत है, इसकी सब सलाह और पूछ-ताछ नित्य घड़ी-आध घड़ी अपनी मा से किया करता था। इसकी मा रमादेवी अब इसे सुचाल और क्रम पर देख मन ही मन चंदू की बड़ी एहसानमंद थी, और जी से उसे असीसती थी। चंदू का इन बाबुओं से यद्यपि कोई लगाव न रह गया था, पर रमादेवी से सब सरोकार इसका वैसा ही बना रहा, जैसा हीराचंद से था। रमा बहुधा चंदू को अपने घर बुलाती थी, और कभी-कभी खुद उसके घर जाय इन बाबुओं का सब हाल और रंग-ढंग कह सुनाती थी। चंदू पर रमा का पुत्र का-सा भाव था, बल्कि इन दोनों की कुचाल से दुःखी और निराश हो चंदू को इसने अपना निज का पुत्र मान रक्खा था। रमा यद्यपि पढ़ी-लिखी न थी, पर शील और उदारता में मानो साक्षात् शची देवी की अनुहार कर रही थी। पुरखिन और पुरनियाँ स्त्रियों के जितने सद्‌गुण हैं, सबका एक उदाहरण बन रही थी। सरल और सीधी इतनी कि जब से अपने पति हीराचंद का वियोग हुआ तब से दिन-रात में एक बार सूखा अन्न खाकर रह जाती थी। सब तरह के गहने और भाँति-भाँति के

कपड़ों के रहते भी केवल दो धोतियों से काम रखती थी। कितनी राँड़-बेवाओं और दीन-दुखियाओं को, जिन्हें हीराचंद गुप्त रूप से कुछ-न-कुछ दिया करते थे, यह बराबर अपनी निजकी पूँजी से, जो सेठ इसके लिये अलग कर गये थे, बराबर देती रही। शील और संकोच इसमें इतना था कि जो कोई इसे अपनी जरूरत पर आ घेरता था, उसके साथ, जहाँ तक बन पड़ता था, कुछ-न-कुछ सलूक करने से नहीं चूकती थी। घर के इंतजाम और गृहस्थी के सब काम-काज में ऐसी दक्ष थी कि बहुधा जाति-बिरादरीवाले भी काम पड़ने पर इससे आकर सलाह पूछते थे। बूढ़ी हो गई थी, पर आधा घूँघट सदा काढ़े रहती थी। केवल नाम ही की रमा न थी, गुण भी इसमें सब वैसे ही थे, जिनसे इसका रमा यह नाम बहुत उचित मालूम होता था। प्रायः देखा जाता है कि सास और बहुओं में और बहू-बहू में भी बहुत कम बनती है, और इस न बनने में बहुधा हम उन कमबख्त सासों ही का सब दोष कहेंगे; क्योंकि बहू बेचारी का तो पहलेपहल अपने मायके से ससुर के घर में आना मानो एक दुनिया को छोड़ दूसरी दुनिया में प्रवेश करना है, फिर से नये प्रकार की जिंदगी में पाँव रखना है; जिसे यहाँ कुछ दिनों तक जितनी बातें सब नई-नई देख पड़ती हैं; जैसे कोई पखेरू, जो पहले

स्वच्छंद मन माफ़िक़ विचरा करता था, पिंजड़े में एकबारगी लाय बंद कर दिया जाय; सब भाँति पराधीन, आज़ादगी को कभी ख़्वाब में भी दख़ल नहीं; अंतिम सीमा की लाज और शरम ऐसा गह के इसका आँचल पकड़े रहती है कि कभी एकदम के लिये भी छुट्टी नहीं दिया चाहती। इस दशा में जो चतुर-सयानी घर की पुरखिनें हैं, वे ऐसे ढंग से साम-दाम के साथ नई बहुओं से बरतती हैं कि उन्हें किसी तरह का क्लेश न हो और सब भाँति अपने बस की भी हो जायँ। सास यदि फूहर और गँवार हुई, तो दोनों में दिन-रात की कलकल और दाँताकिटकिट हुआ करती है। इस हालत में वह घर नहीं, वरन् नरक का एक छोटा-सा नमूना बन जाता है। इस रमा का क्या कहना है; यह तो मानो साक्षात् कोई देवी थी। स्त्रियों के दुर्गुणों की इसमें छाया तक न आई थी। इसने अपनी दोनों बहुओं को ऐसे ढंग से रक्खा कि वे दोनों इसकी अत्यंत भक्त और आज्ञाकारिणी हुईं, और आपस में ऐसा मिलजुल कर रहती थीं कि बहन-बहन मालूम होती थीं। यह कोई नहीं कह सकता कि ये देवरानी-जेठानी हैं। ससुरार के सुख के सामने मायके को ये दोनों बिलकुल भूल गईं। पाठकजन, हम आशा करते हैं, आप लोगों को ऐसी ही रमा की-सी घर की पुरखिन और

दो सुशीला बहुओं की-सी बहू मिलें, जैसा सेठ हीराचंद और इन दोनों बाबुओं को मिली हैं।

दसवाँ प्रस्ताव

"संगत ही गुन ऊपजै, संगत ही गुन जाय"

हीराचंद के घर से दस घर के फ़ासिले पर कुछ कच्चा कुछ पक्का एक मकान था। उसमें नंददास नाम का एक मनुष्य रहता था। यह कौन था, और कब से यहाँ रहता था, इसका कोई ठीक पता नहीं मालूम; पर इतना अलबत्ता पता लगता था कि यह हीराचंद की बिरादरी का था, और इन बाबुओं को भैया-भैया कहा करता था। इससे यह भी कुछ टोह लगती थी कि इसका बाबुओं के घराने से कोई दूर का रिश्ता भी रहा हो, तो क्या अचरज! बाबू के सब नौकर इसे नंदू बाबू कहा करते थे। बाप इसका शुरू में कपड़े तथा दूसरी-दूसरी देशी चीजों की एक साधारण-सी दूकान करता हुआ निरा बक्काल के सिवा किसी गिनती में न था। मसल है, "तीन दिवाले साव"। वह इस हिकमत को अमल में लाकर कई बार दिवाला काढ़ और पीछे आधे-तिहाई पर अपने देनदारों से मामला कर लाख-पचास हजार की पूँजी भी इसके लिये छोड़ गया था। इसलिये नंदू अपना

दिमाग़ इन बाबुओं से कुछ कम न रखता था। थोड़ी उर्दू जानता था; टूटी-फूटी अँगरेज़ी भी बोल लेता था। वहीं के दिहाती मदर्सों में पढ़ा था; दो-एक छोटे-मोटे इम्तिहान भी पास किये था। बस, इतना ही कि मुख्तारी और मुंसिफ़ी तक वकालत करने का अख्तियार हासिल था। पर क़ानूनी लियाक़त में अपने आगे हाईकोर्ट के वकीलों को भी कुछ माल न गिनता था, और साधारण लियाक़त में तो बृहस्पति और शुक्राचार्य को भी अपना चेला समझे बैठा था। तरहदारी और अमीरी में पूरा दम भरता था; पर उस तरह की तरहदारी और अमीरी नहीं कि गाँठ का पैसा खो बैठे, वरन् ऐसे-ऐसे लटके सीखे था कि किसी ऐसे बड़े मालदार नये उभरे हुए को ढूँढ़ें, जिसे कोई रोकने-टोकने वाला न हो, वरन् वह कमसिनी ही में खुदमुख्तार बन बैठा हो। नितांत अल्पज्ञता के कारण इतना मदान्ध और निर्विवेक था कि बहुधा अपने छिछोरपन और सिफ़लापन के सबब शिष्ट समाज में कई बार भरपूर दक्षिणा पा चुका था, तो भी अपने छिछोरपन से बाज़ नहीं आता था। यदि कोई समझदार और तमीज़वाला होता, तो आत्मगौरव न रहने के रंज से समाज में फिर मुँह न दिखलाता। पर ग़ैरत को तो यह घोलकर पी बैठा था; इसकी आँख का पानी ढरक गया था। शरम और

हया कैसी होती है, जानता ही न था। सच मानिये, शिष्ट समाज और शराफ़त के कलङ्क ऐसे ही लोग होते हैं, जो जाहिरा में दिखलाने को ऐसा रँगे-चुँगे चूना-पोती कबर के माफ़िक़ बने-ठने रहते हैं कि बस, मानो रियासत के खंभ हैं; शिष्टता के स्रोत हैं, भलमनसाहत के नमूने हैं; पर भीतर पैठकर देखो, तो उनके घिनौने और मैले कामों से जी इतना घिनाता है कि ऐसों का संपर्क कैसा, मुखमात्र के अवलोकन में महाप्रायश्चित्त लगता है। ऐसों के संपर्क से जो बचे हुए हैं, उन पर ईश्वर की मानो बड़ी कृपा है। आँख चुन्धी, गाल फूले, चेचकरू, कोती गरदन, पस्त क़द, किन्तु बनावट और सजावट में यह कामदेव से उतर कर दूसरा दरजा अपना ही क़ायम करता था। नन्दू ही के समानशील लोगों का एक गण-का-गण था, जो महादेव के गण नन्दी-भृङ्गी के समान इसके आश्रित थे। उन सबों में एक इसका बड़ा विश्वासपात्र था। नाम इसका रघुनन्दन था, पर नन्दू इसे रग्घू कहा करता। रग्घू जाति का ब्राह्मण था, पर कदर्यता में अत्यन्त पामर महाशूद्र से भी गया-बीता था। केवल नामधारी ब्राह्मण था। नन्दू का कोई ऐसा काम न होता था, जिसमें रग्घू मौजूद न रहे। सच तो यों है कि नन्दू इस रग्घू का इतना आश्रित हो गया था कि बिना इसके नन्दू लुञ्ज-पुञ्ज-सा

रहता। तारबर्क़ी के समान नन्दू जिस काम में इसे प्रवृत्त कर देता था, उसे पूरा होते ज़रा देर न लगती थी। बसन्ता जैसा उन बाबुओं का परिचारक और मुफ़्तख़ोरा ख़ुशामदी था, वैसा ही रग्घू नंदू बाबू का अनुचर था। अंतर उसमें और इसमें केवल इतना ही था कि बसन्ता निपट निरक्षर कुंदेनातराश था, पर रग्घू को अक्षरों से भेंट थी; पर वही नाम-मात्र को, इतना कि जिससे हम इसे पढ़ा-लिखा या साक्षर नहीं कह सकते। बसन्ता निपट उजड्ड और जघन्य था; किंतु रग्घू चालाकी में एकता और अमीरों का रुख़ पहचान उन्हें ख़ुश रखने के हुनर में बहुत प्रवीण था। जहाँ-जहाँ नंदू आया-जाया करता था, वहाँ-वहाँ रग्घू उसका पुछल्ला ही था। तब क्योंकर संभव था कि इसके चरण भी वहाँ न पधारें। इस द्वार से प्रायः अनंतपुर के छोटे-बड़े रईस तथा आस-पास के तअल्लुक़ेदारों से इसकी भरपूर जान-पहचान हो गई थी। यहाँ तक कि इन अमीरों में यह "नन्दू के रग्घू" इस नाम से प्रसिद्ध था। रग्घू की भी अपनी तरहदारी और अन्दाज़ का दिमाग़ नन्दू बाबू से कुछ कम न था। घर में चाहे भूँजी भाँग न हो पर बाहर यह ऐसे अन्दाज़ से रहता था कि एक नया आदमी, जो इसका सब कच्चा हाल न जानता हो, इसे बड़ा अमीर मान लेता।

नन्दू का बड़ा प्रेमी और दिली दोस्त एक तीसरा आदमी और था। इसके जन्म-कर्म का सच्चा हाल किसी को मालूम न था। पर नन्दू इसे हकीम साहब कहा करता था। हकीम साहब अपने को नवाबज़ादा बतलाते थे, और अपनी पैदाइश का हाल बहुत छिपाते थे। पर जो असल बात होती है, वह किसी-न-किसी तरह अन्त को प्रगट हो ही जाती है। असलियत इसकी यों है कि इसका बाप कन्दहार का रहनेवाला, नवाब शुजाउद्दौला के खुशामदी उमराओं में से था। इसने एक खानगी रख ली थी। उससे एक लड़की और एक लड़का हुआ था। उपरांत का हाल फिर कुछ मालूम नहीं कि यह लखनऊ से यहाँ क्योंकर आया, और कब से यह अनंतपुर में आ बसा। उस कंदहारी अमीर की दूसरी औलाद इसकी हमशीरा को भी बराबर तलाश करते रहियेगा, तो हमारे इसी क़िस्से में कहीं-न-कहीं पर अवश्य ही पा जाइयेगा। यह हकीम साहब बाहर तो बड़े तूमतड़ाँग और लिफ़ाफे से रहते थे, पर भीतर मियाँ के सिवा एक टूटी खाट और तीन सनहकी के कुछ न था। असल में इसका नाम क्या था, कौन जाने; पर सब लोगों में हकीम फ़ीरोज़बेग कंदहारी अपने को मशहूर किये था। नंदू इसका सिद्धसाधक था। इसलिये जहाँ तक बन पड़ता, छोटे-बड़े सबोंसे इसकी बहुत-सी

तारीफ़ कर-कराय इसका प्रवेश उस ठौर करा देता था। यह क्यों इसकी इतनी सिफ़ारिश करता था, इसका भेद भी आप धीरज धरे चले चलिये, खुली जायगा। इस बात की ताक में तो यह न जानिये कब से था कि किसी-न-किसी तरह हीरा-चंद के घराने में हकीम साहब का प्रवेश करावें; पर चंदू के कारण, जो देखते ही आदमी की नस-नस पहचान जाता था, दूसरे हीराचंद की स्त्री रमादेवी के कारण, जिसे हकीमी दवा तथा मुसलमानों से किसी तरह का संपर्क रखने में घिन और चिढ़ थी, नंदू की कुछ चलती न थी। हकीम भी यह केवल नाम ही का हकीम था; हिकमत मुतलक न पढ़ा था। मुसल-मानों में यह एक चलन है कि जो लोग कुछ पढ़े-लिखे होते हैं, और उन्हें कहीं कुछ जीविका का डौल न लगा, तो वे या तो हकीम बन जाते हैं, या मौलवी हो लड़कों को पढ़ा अपना पेट पालते हैं। पढ़ा-लिखा तो यह बहुत ही कम था; पर शीन-क़ाफ़ का ऐसा दुरुस्त और बातचीत ऐसी साफ़ करता था कि कहीं से पकड़ न हो सकती थी कि यह मूर्ख है। तस्बी एकदम इसके हाथ से न छूटती थी। देखनेवाले तो यही समझते थे कि हकीम साहब बड़े दीनदार और खुदा-परस्त हैं, पर इस तस्बी से कुछ और ही मतलब निकलता था। तस्बी की गुरियों को जो वह ज़ाहिरा में फेरा करता

था, सो मानो इसकी गिनती गिना रहा था कि इतनों को मैं अपनी चालाकी का शिकार बना चुका हूँ। तस्बी फेरते-फेरते जो कभी-कभी आँख मूँद लेता था, सो मानो बक-ध्यान लगा कर यह सोचता था कि नये असामियों को अब क्योंकर चंगुल में लाऊँ।

नंदू बहुधा बड़े बाबू से हकीम साहब की तारीफ़ किया करता था। दो-एक बार अपने साथ ले भी गया। पर सिवा बंदगी-सलाम और रामरमौअल के पहले के माफ़िक़ मुखातिब अपनी ओर तथा हकीम की ओर उन्हें न देख मन-ही-मन मसोस कर रह जाता, और चंदू को सैकड़ों गालियाँ दिया करता कि इस खूसट के कारण मेरा जमा जमाया कारखाना सब उचटा जाता है।

अस्तु, एक रात को अचानक बाबू के पेट में ऐसा शूल उठा कि उन्हें किसी तरह कल न पड़ती थी। मारे पीड़ा के उनकी आँख निकली पड़ती थी; दाँत बैठे जाते थे। सब लोग घबड़ा गये। कई एक वैद्य और डॉक्टर बुलाये गये। दवाइयाँ भी चार-चार मिनिट पर कई बार और कई क़िस्म की दी गईं। पर दवाइयाँ तो कोई सजीवन बूटी हुई नहीं कि गले के नीचे उतरते ही अमृत बन जायँ। किंतु अमीरी चोचलों में इतना सबर और धीरज कहाँ? सब लोग दौड़-धूप में

लगे हुए—जिसे जो सूझा—तदबीरें कर रहे थे कि हकीमजी को साथ लिये नंदू भी आया, और बोला—"हकीमजी, इस जून आपके उस अर्क़ की जरूरत है, जो आपने एक बार मुझे दिया था। जनाब, अर्क़ क्या है सजीवन मूल है, देखिये, कैसा तुर्त-फुर्त आपको राहत होती है।" हकीम बोला—"जनाब-आली, मुझे क्या उजर है। अल्लाह ताला आपको सेहत दे।" उसके पहले नींद की दवा दी जा चुकी थी, औंघाई आ रही थी कि इसी समय हकीम का वह अर्क़ भी दिया गया। अर्क़ पीने के बाद ही बाबू को नींद आ गई, रात भर खूब सोया किये।

दूसरे दिन नंदू फिर आया, और बाबू को चंगा देख बोला—"भैया, अब तक तो मैं जब्त किये था, कुछ नहीं कहता-सुनता था, आपको वह पंडित किसी समय ऐसा धोखा देगा कि जन्म भर पछताते रहेंगे। ये आण्डित-पण्डित गँवरदल होते हैं। ये हम लोगों की शाइस्तह जमात में कभी क़दर पाने लायक़ हो सकते हैं? उस अहमक़ ने तो कल आपकी जान ही ली थी। यह तो कहिये, हकीम साहब कल आपके लिये ईश्वर हो गये, जान बचायी, नहीं तो कुछ बाक़ी रह गया था? हकीम साहब बड़े क़ाबिल आदमी हैं। मैं कहाँ तक उनकी तारीफ करूँ। अब तो आपसे उनसे सरोकार हो

चला है; दिनोंदिन ज्यों-ज्यों उनसे लगाव बढ़ता जायगा, आप उनकी सिफ़तों को पहचानेंगे। ख़ैर, आपको सेहत हो गई। यक़ीन जानिये, कल की रात हम लोगों की ऐसे तरद्दुद में बीती कि जन्म भर याद रहेगा। अच्छा, तो बंदगी, अब रुख़सत होता हूँ। दोपहर तक फिर आऊँगा, और हकीम साहब को भी लेता आऊँगा।"

इसकी बातों का बाबू पर कुछ ऐसा असर पड़ा कि उसी दम से इनकी तबियत में चंदू की ओर से घिन हो गई, और जो कुछ क्रम इसमें सुधराहट और भलाई के आ चले थे, सब विदा होने लगे। इन धूर्त्त चौपटों की बन पड़ी। बसंता भी इस समय तक जेल में छः महीने काट आ मिला। इन बाबुओं को ऐगुन की खान कर उन्हें अपना शिकार बनाने को पूरा अखाड़ा जमा होगया। सच है—"सङ्गत ही गुन ऊपजे सङ्गत ही गुन जाय।"

ग्यारहवाँ प्रस्ताव

"अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः कर-
सहस्रमपि" (भारवि)

अनंतपुर की घनी बस्ती के बीचोंबीच लबे सड़क दो खण्ड का एक पक्का मकान था, यद्यपि यह मकान बड़ा लम्बा चौड़ा

तो न था पर चारों ओर से हवादार और ऐसे क़िता का बना था कि रहनेवाले को सब ऋतु में आराम पहुँच सकता था। इस मकान के आगे के हिस्से में ऊँची पाटन का एक वसीह कमरा था जिसकी दीवालें चटकीली सुफ़ैदी पुती ऐसी घुटी हुई थीं मानो संगमरमर की बनी हों। और यह कमरा इस ढङ्ग से आरास्ता था कि इसमें थोड़ी ही अदल बदल करने से अङ्गरेजी ढंग का उमदा ड्राइङ्गरूम भी हो सकता था। बाहर से देखनेवाले समझते होंगे कि यह मकान बराबर ऐसा ही पुख्ता, वसीह और सुथरा होगा किंतु इस बघमुहे मकान में यह कमरा ही सबकी नाक था। इस कमरे के पीछे पाँव रखते ही ओकाई आने लगती थी और दुर्गंधि से नाक सड़ जाती थी।

हम पहले कह आये हैं, हीराचंद के समय जो अनंतपुर काशी और मथुरा का एक उदाहरण था वह इन बाबुओं के जमाने में दिल्ली और लखनऊ का एक नमूना बन गया। कुछ अर्से से इस मकान में एक ऐसे जीव आ टिके थे जिनकी हुस्नपरस्तों के बीच उस समय अनंतपुर में धूम थी। यह कौन थे, कहाँ से आये थे और कब से यहाँ आकर बसे थे कुछ मालूम नहीं, न यही कुछ पता लगता कि किस वसीले से यहाँ अनन्तपुर ऐसे छोटे क़स्बे में यह आ

रहे । यद्यपि दिल्ली, लखनऊ, कलकत्ता, बम्बई, लन्दन, पेरिस आदि बड़े-बड़े नगरों में ऐसे जीवों की कमती नहीं है; हिन्दू, मुसलमान, पारसी, यहूदी, कश्मीरी, आरमीनी, अङ्गरेज इत्यादि हर एक क़ौम और जाति में एक से एक चढ़ बढ़ के खूबसूरती और सौन्दर्य में एकता हुस्नवाले सैकड़ों मौजूद हैं, पर यहाँ स्थानभ्रष्ट के समान ऐसों का आ टिकना अलबत्ता एक अजरज या कौतुक था ! जो हो यहाँ के लोग इसके निस्बत भाँति २ की कल्पनायें कर रहे थे । कोई लखनऊ की बेगमातों में इसे मानते थे; कोई कहते थे "नहीं-नहीं यह दिल्ली के शाही घरानों में से हैं"; किसी का ख्याल था यह कश्मीर से आई है इत्यादि; और कोई इसे यहूदिन समझता था । वय-क्रम इसका देखने में बाइस के ऊपर और पचीस के भीतर मालूम होता था । गोरा रंग, हीना से दामिनी सी दमकती हुई इसके एक-एक सुडौल साँचे के ढले अङ्गों पर सुंदरापा बरस रहा था, बातचीत, चाल-ढाल और वज़ेदारी से यह किसी अच्छे घराने की मालूम होती थी । इसको परदे में रहते न देख लोगों के मन में दृढ़ विश्वास जम गया था कि यह बंबई की कोई पारसिन या यहूदिन है । थोड़ा उर्दू फ़ारसी भी पढ़ी थी इसलिए इसकी जबान साफ़ और शीन क़ाफ़ दुरुस्त था । एक प्रकार की संजीदगी और शऊर इसके चेहरे की मिठास

और सलोनापन के साथ ऐसी मिल-जुल गई थी कि देखने-वाले के लोचनों की इसे बार-बार, देखने की प्यास कभी बुझती ही न थी। यह अपने घने केश-जालों में अलकावली की गूथन से तथा विकसित-पुंडरीक-नेत्रों से वर्षा और शरत् ऋतुओं का अनुहार कर रही थी। वयःसंधि के कारण यह बाला बालभाव के पुण्य का ओर समझ मानो उसे छोड़ रही थी, और बिना किसी के दिये भी जो मन्मथ के आवेश के परवश हो गई सो मानो यौवन की बन पड़ी कि आपसे आप आकर यह उसके हस्तगत हुई। इसकी चढ़ती जवानी का जोश और लुनाई क्या थी मानो इसको अपने प्रेम की सिद्धपीठ माननेवालों के आँख का एक ऐसा सुरमा था जिसे लगाते ही उनका मन इसकी ओर खिंच आता था; अथवा यों कहिये, इसका सुंदरापा उनके मन के आकर्षण ... मोहन मंत्र था, या नवयौवन युवराज के विजय का कीर्ति-स्तम्भ था, अथवा कुम्हार के समान ब्रह्मा के बार-बार सृष्टि गढ़ने के अभ्यास का फल था; या रूप खजाने की रखवाली के लिये सिपाही था; जिसे कामदेव यथेच्छाचारी राजा ने तैनात कर रक्खा था, या हर-नेत्र-हुताश-दग्ध-अनङ्ग को फिर से जिलाने का सजीवन लटका था। निस्संदेह यह युवती यौवनचंद्रोदय की चाँदनी थी; रतिरसामृत की महानदी थी;

कांति की कौमुदी थी; दमकती-द्युति सौदामिनी थी; अनङ्ग पहलवान के खेल की रंगशाला थी। पद्मराग समान लाल और पतले होंठ, गोल ठुड्ढी, ऊँचा चौड़ा माथा, कुंद की कली से दाँत, सीधी और बराबर उतार चढ़ावदार सुग्गा के टोंट सी या तिल के पुष्प सी नासिका, गोल कपोल, कटीली और रसीली आँख, रेशम के लच्छे से सिर के बाल, सब मिल इसके चेहरे पर एक अनोखी छवि दरसा रहे थे। यह अपने को हुमा बेगम के नाम से प्रसिद्ध किये थी। यह हुमा केवल खूबसूरती और शऊर में एकता न थी किंतु गाना बजाना इत्यादि कई तरह के हुनर में भी अपनी सानी न रखती थी। अनंतपुर ऐसे छोटे से क़स्बे में तो इस कोकिलकंठी के सौन्दर्य और गाने की धूम थी। यद्यपि यहाँ के छोटे बड़े रईस सभी इसके मुश्ताक़ हो रहे थे किन्तु नन्दू तो इस पर तन मन से लट्टू था। अपने मामूली काम काज से फ़ुरसत पाते ही वहाँ पहुँचता था। हुमा भी जो शऊर और ढंगदारी में पल्ले दर्जे की चालाक थी, इसकी नस-नस पहचान गई थी और इसे अपना खिलौना बनाये थी। अस्तु, उच्च पद से नीचे गिरते हुए मनुष्य को हज़ार-हज़ार तदबीर सब व्यर्थ होती है। सूर्य जब डूबने लगता है तो उसे हज़ार किरनें सब एक साथ थामती हैं पर वह नहीं रुकता, इसी तरह डूबते

हुए इन बाबुओं को सम्हाल रखने को चन्दू तथा रमा ने कितनी-कितनी तद्बीरें और यतन किये किन्तु एक भी कारगर न हुए, अन्त को विष की गाँठ सी यह हुमा ऐसी यहाँ आ बसी कि नन्दू सरीखे कुढंगियों को अपने ढंग पर इन बाबुओं को ढुलका लाने और गढ़कर अपना ही सा बना देने के लिए मानो औज़ार हुई। मसल है "एक तो तित लौकी दूसरे चढ़ी नीम" ये बाबू लोग तो यों ही यौवन और धन के मद से अन्ध हो रहे थे। चन्दू सरीखे चतुर सयाने प्रवीण के उपदेश का बीज लाख-लाख तरह पर उलटी सीधी बात सुझाने से कभी-कभी जम आता था तो चारो ओर से दुःसङ्ग ओले के समान गिर उस टटके जमे हुए अङ्कुर का कहीं नाम और निशान भी न रहने देते थे। इसी दशा में रूपराशि हुमा ने अपने रूप का ऐसा गहरा जादू इन पर छोड़ा कि अब फिर सम्हलने की कोई आश न रही। पर चन्दू इनकी ओर से सर्वथा निराश न हुआ था, यह इन्हें बार-बार सीधी राह पर लाने की फिकिर में लगा ही रहा। सौ अजान में एक सुजान पर ध्यान जमाये हमारे पाठक यदि हमारे साथ ऐसे ही धीरे-धीरे चले चलेंगे तो अन्त को एक बार चन्दू को कृतकार्य होते पावेहींगे।

बारहवाँ प्रस्ताव

"धूर्त्तैर्जगद्वञ्चयते"

अनन्तपुर में छोटे-छोटे मुक़द्दमों की कारवाई के लिये तीसरे दरजे की मुनसिफ़ी, तहसीली की कचहरी और पुलिस का एक थाना के सिवाय और कुछ न था। फ़ौजदारी तथा दीवानी के जो कोई भारी और पेंचीदा मुक़द्दमे होते थे सब यहाँ के ज़िले की कचहरी लखनऊ में भेज दिये जाते थे। यहाँ हाल में एक मुनसिफ़ मुक़र्रर होकर आये थे। ये कौन थे, क्या इनका मज़हब था, कुछ पता न लगता था किन्तु अपने रंग-ढंग से नेचरिये ज़ाहिर होते थे। पोशाक इनकी बिलकुल अङ्गरेज़ी वज़ा की थी, यहाँ तक कि कभी-कभी अङ्गरेज़ी टोपी (हैट) भी इस्तेमाल करते थे; खाने-पीने में भी इन्हें किसी तरह का परहेज़ न था, पैदाइश के तो हिन्दू ही थे पर यह नहीं मालूम कि इनकी क्या जाति थी। कोई इन्हें कश्मीरी समझता था, कोई इस समय के तालीमयाफ़्ता पढ़े-लिखे लालाओं में मानता था। डाढ़ी और चुटिया दोनों इनके न थीं, रंग भी गोरा था इसलिये ज़ियादह लोगों की यही राय थी कि यह कोई हाफ़कास्ट केरानी या यूरोपियन हैं। पंडित या बाबू की उपाधि से इन्हें बड़ी चिढ़ थी, यह साहब बनने और अपने नाम के आगे मिस्टर लिखने की चाल बहुत पसन्द

करते थे और अपने दोस्तों से इस बात की ताक़ीद भी कर दी थी। ये मिज़ाज या बर्ताव में अपने को सुशिक्षितों के सिरमौर मानते थे, पर दिल पर सुशिक्षा का असर पहुँचा हो इसका कहीं कुछ लेश भी न था। चालाकी में अच्छे खासे पढ़े थे, दस-पंद्रह वर्ष मुन्सिफ़ और सदराला रह कहीं कुछ थोड़ा-बहुत नीचा खाकर बल्कि पिट-पिटाकर भी आठो गांठ कुम्मैद हो चुके थे। भाँड़ों की नक़ल है कि दो सौ जूते खाकर भी इज्जत न गँवाई। अपना रंग जमाने में तथा पाकेट गरम करने के फ़न में ये पूरे उस्ताद गुरुओं के भी गुरु थे, बल्कि यह ऐसे ही लोगों का क़ौल है कि ऐसा बलंद इख्तियार हासिल कर जिसने दियानतदारी की और फूंक-फूंक पांव रखता हुआ कोरे का कोरा बना रहा वह नुत्फ़े हराम है, ऐसे बेअक़िल को चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिये। ऐसे लोग इसकी दो वजह कहते हैं एक तो सियाह सुफ़ैदी का कुल इख्तियार हाथ में आना दूसरे बमुक़ाबिले अँगरेजों के जो छोटे से छोटे ओहदे पर डेढ़ हज़ार-दो हजार महीने में तनख्वाह सहज में फ़टकारा करते हैं हम जो जन्म भर नौकरी कर लियाक़त का जौहर दिखलाते हुये बराबर नेक नाम रह बुड्ढे होते-होते पांच सौ छः सौ महीने में पाने लायक़ समझे गये तो इतने में होता ही क्या है, इतना तो हमारे शराब-कबाब का

खर्च है । ऐसे लोगों की, जो अपने गुनों में सब तरह भरे पूरे हैं, किसी नये जिले में पहुँचते ही पहिली बात सरिश्ते की जाँच और मातहतों पर तंदीही करना है । जिन्हें अपने काम में बर्क और जाँच की कसौटी में कसने पर खरे और बेलौस पाया उन्हें तबदील या मौकूफ़ करने की फ़िकिर में लगे । यह सब इसलिये करते हैं जिसमें ऊपर के हाकिमों को सबूत हो जाय कि यह दफ़्तर की सफ़ाई और अपने सरिश्ते का काम दुरुस्त रखने में बड़ा निपुण है । निश्चय जानिये यह सब उसी से बन पड़ेगा जो क़लम का ज़ोरावर, ज़बान का तर्रार, और हिम्मत का दबंग हो । जो ऐसा नहीं है, बोदा और लियाक़त में खाम है, वह पाकेट गरम करने में भी सदा डरा करेगा, उसे चालाकी के खुल जाने का खौफ़ हमेशा दामनगीर रहेगा । पहले वर्ष छः महीने भीतर-भीतर उस जिले का हाल दरियाफ़्त करेंगे कि यहाँ कौन-कौन रईस हैं, किस हैसियत के मुक़द्दमे लड़नेवाले हैं, क्या उनकी चालचलन है, किस तरह की उनकी सोहबत है, क्या काम उनके यहाँ होता है इत्यादि इत्यादि । किसी छोटे वकील को अपने इजलास में बढ़ा रखना भी एक ढंग ऐसे लोगों का रहता है । अस्तु, हमारे उक्त मुंसिफ साहब यह सब भरपूर समझ बूझ गये थे और अब इस समय बेढ़

वर्ष के ऊपर यहाँ जमे इन्हें हो भी गया था। उनके ज़िले भर में जो जहाँ जैसे छोटे बड़े तअल्लुक़ेदार, रईस तथा सेठ, साहूकार, महाजन थे सब इनकी निगाह पर चढ़ गये थे। उन्हीं में ये दोनों बाबुओं का भी सब कच्चा हाल दरियाफ़्त किये हुये यही ताक में थे कि किसी तरह कोई मुक़द्दमा इन बाबुओं का दायर हो। दो एक मुलाक़ात भी उनकी इनसे हो चुकी थी, तोहफ़े और नज़र भेंट की चीज़ें तो अकसर आया ही करती थीं। नन्दू जिसे बाबुओं ने थोड़े दिनों से अपना मुख़्तारआम कर रक्खा था मुंसिफ़ साहब तक बाबुओं की रसाई करा देने का एक ज़रिया था मसल है "चोरै चोर मौसियायत भाई"। इधर ये तो कुछ अपनी गों में थे कि यह बड़े आला रईस के घर का मुर्गा है इसके ज़रिये मनमानता माल कट सकता है, उधर नन्दू अपनी ही घात में था कि ऐयाशी का चस्का तो इसे लगा ही है किसी तरह इस मरदूद को भी बाबुओं की भाँति अपने चंगुल में फँसा लें। तब क्या हमी हम देख पड़ें और अवध में बड़े से बड़े नवाबों से मेरा रुतबा और ठाठ कुछ कम न रहै। बस यही हुमा बेगम इसके लिये भी काफ़ी होगी। इसी नियत से यह अकसर किसी न किसी बहाने लखनऊ में महीनों आकर टिका रहता था और मुन्सिफ़ साहब से रफ़्त-ज़फ़्त

भी खूब पैदा कर ली थी। यहाँ अपनी ग़ैरहाज़िरी में हकीम साहब से खूब ताक़ीद कर दिया था कि वह बाबुओं के रहन-सहन और चाल-चलन को अच्छी तरह चौकसी के साथ देखते रहैं, क्योंकि उसे यह डर बनी ही रही कि कहीं ऐसा न हो कि चन्दू फिर कोई उपाय बाबुओं को ढङ्ग पर लाने का कर गुज़रे और उसका जमा जमाया सब खेल उचट जाय। इस बीच यहाँ हकीम साहब से बड़े बाबू की बेहद घिष्ट पिष्ट बढ़ गई, दिन-दिन भर रात-रात भर बाबू ग़ायब रहते थे। बाबू, हकीम और नन्दू ये तीनों हुमा के ऐसे भक्त हो गये कि रातों दिन उसकी उपासना में लगे रहा करते थे, पर इसमें मुख्य उपासना बाबू ही की थी, क्योंकि वे दोनों तो मानों भारे के टट्टू से थे, उपासनाकाण्ड का पूरा दारमदार केवल बाबू ही पर आ लगा था। उधर छोटे बाबू की एक निराली ही गुट्ट क़ायम हो गई और दोनों मिलकर आवारगी में औवल दरजे की सार्टीफिकेट के बड़े उत्साही कैंडिडेट हो गये। हम ऊपर कह आये हैं, बड़े बाबू को चिट्ठी-पत्रियों पर दस्तख़त करना भी बहुत जब्र होता था। कोठी तथा इलाक़ों का सब काम मुनीम गुमाश्ते और कारिंदों के हाथ में आ रहा। बहती गङ्गा में हाथ धोने की भाँति सभी अपना-अपना घर करने लगे। नन्दू मालामाल हो गया,

क्योंकि हुमा की फ़रमाइशें इसी के जरिये मुहैया की जाती थीं, और वहाँ का कुल हिसाब किताब सब इसी के सिपुर्द था। यद्यपि बाबू की हुमा से रसाई कराने का खास जरिया हकीम ही था पर इसके हाथ केवल ढाँक के तीन पत्ते रहे। कारण इसका यही था कि नंदू जात का बक्काल रुपये को अपनी जिंदगी का सर्वस्व माननेवाला महा टञ्च बनिया था, रुपये की क़द्र समझता था और यह इसका सिद्धांत था कि मान, प्रतिष्ठा, बड़ाई, शील, संकोच, मुलाहिज़ा सब रुपये के आधीन है; उसमें यदि हानि होती हो तो उमदा-उमदा सिफ्तें और बड़े-बड़े गुन भार में झोंक दिये जायँ :—

अर्थोस्तुनः।केवलं—येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥

इधर हकीम एक तो मुसलमान, दूसरे पुराने समय की अमीरी की बू में पगा हुआ था; घर में भूँजी भांग भी चाहे न हो पर ज़ाहिरा नुमाइश नौवाबों ही की सी रहना चाहिये। हकीम साहब जो दाने दाने को मुहताज थे बाबू की बदौलत अमीरों के से सब ठाठबाट और ऐश आराम में ग़र्क़ हो गये। बाबुओं का सवाई डेहुड़ा ख़र्च हकीम साहब का हो गया। जोड़ने की कौन कहे कर्ज़दार रहा किये। दूसरी बात हकीम साहब के यह भी ज़िहननशीन थी कि हुमा की यह सब कमाई जो इस समय बाबू को फँसा बेशुमार माल चीर रही है वह भी

तो आखिर मेरी ही है; क्योंकि सिवा मेरे हुमा के और दूसरा है कौन, हुमा भी जाहिरा में तो हकीम से कुछ सरोकार न रखती थी पर भीतर-भीतर दोनों एक ही थे। दोनों के सूरत शकल में भी एक ऐसा मेल था कि ताड़बाजों के लिये बहुत कुछ शक करने की गुंजाइश थी। रमा अपने दोनों लड़कों के कुढंग से सोने का घर मिट्टी होते देख भीतर ही भीतर चूरचूर थी, खाना पीना तक छोड़ दिया और दुबला कर लकड़ी सी हो गई थी। सौ-सौ तदबीरें उनके सम्हलने की कर थकी, पर इन दोनों को राह पर आते न देख जहाँ तक हो सका कार बार सब तोड़ बैठी। बाहर की दूकानें सब उठा दिया केवल उतना ही मात्र रख छोड़ा जिसे वह अपने आप सम्हाल सकती थी और जिसे इसने देखा कि उठा देने से बड़े सेठ हीराचन्द के नाम की हलकाई होगी और उसके स्थापित ठौर ठौर धर्मशाला, पाठशाला, सदावर्त इत्यादि का खर्च न सट सकेगा। दूसरी बात रमा को यह भी मालूम हुई कि एक चन्दू को छोड़ और जितने लोग पुराने-पुराने इस घर के असरइत थे सबोंने, किसी को सम्हालनेवाला न पाकर, जिससे, जहाँ, जितना, लूटते खाते बना मनमानता लूटा खाया; मानो ये लोग सेठ के घराने के बिगड़ने के लिये उलटा माला सा फेर रहे थे। चन्दू अलबत्ता बाबुओं को राह पर लाने की फिकिर में लगा ही रहा,

छिपा-छिपा रोज़-रोज़ का इन दोनों का सब रंग-ढंग तजवीज़ा किया और अपने भरसक छल-बल-कल से न चूका, जब-तब आकर रमा को भी ढाढ़स दे जाता था। रमा का मन तो यद्यपि इन लड़कों की ओर से बिलकुल बुझ सा गया था पर यह अब तक हिम्मत बाँधे था कि इन दोनों को राह पर एक दिन अवश्य ही लाऊँगा, किन्तु जब तक ये गदहपचीसी के पार न होंगे और नई उभर का तक़ाज़ा ज्वर के समान चढ़ा रहेगा तब तक इनका ढंग से होना दुर्घट है। उसे विश्वास था कि यदि बड़े सेठ साहब की सुकृत की कमाई है और वे सिवाय भले कामों के मन से कभी किसी बुरी बात की ओर नहीं गये तो सम्भव नहीं कि उनकी औलाद पर उस भलाई का असर न पहुँचे। यह कहावत कि "बाढ़ै पूत पिता के धर्मे" कभी उलटी होहिगी नहीं। चन्दू इसी फिकिर में था कि किसी तरह नन्दू से बाबुओं का लगाव छूट जाता तो इन दोनों का ढंग से हो जाना कुछ कठिन न होता। इधर नन्दू भी मन में खूब समझे हुये था कि यह पण्डित मेरा पक्का दुश्मन है। यह यहाँ का रहनेवाला नहीं, एक अजनबी पर-देशी ने ऐसा क़दम जमा रक्खा है कि बड़ी सेठानी बहू मा जो यह कहता है वही करती हैं; नहीं तो जैसा मैंने बाबू को काठ का उल्लू बनाय अपने ताबे में कर छोड़ा था वैसा ही

रमा बहू को भी, स्त्री की जाति हैं, मुट्ठी में करते क्या लगता था ? इस लिये इस चन्दू से मेरे जी में हर तरह पर खटक है क्या जानिये यह एक दिन मेरी सब चालाकी बाबू के जी में नक़्श करा दे । ख़ैर देखा जायगा अब तो इस समय हीराचन्द की कुल दौलत और राज पाट सब मेरे हाथ में है, अभी तो जल्द बाबू का वह नशा उतरनेवाला है नहीं; तब तक में तो मैं कुल दौलत सेठ के घराने की खींच लूँगा; पीछे से ये दोनों लड़के होश में आही के क्या करेंगे।

सच है, धूर्त और कुटिल लोगों की कार्रवाई का लखना बड़ा ही दुर्घट है। कोई निराला ही तत्त्व है जिससे वे गढ़े जाते हैं। ऐसों की जहरीली कुटिलनीति ने न जानिये कितनों को अपने पेच में ला जड़-पेड़ से उखाड़ डाला। इसलिये जो सुजान हैं वे ही उनकी कुटिलाई के दांव-पेंच से बचे हुये अपनी चतुराई के द्वारा दूसरों को भी अन्धियारे गढ़े में गिरने से रोक लेते हैं।

तेरहवाँ प्रस्ताव

योऽर्थे शुचिः स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।

यह हम अपने पाठकों को प्रकट कर चुके हैं कि हमारे इस उपन्यास के मुख्य नायक दोनों बाबू बहुत सा फ़िजूल खर्च

करते-करते अब संकीर्णता में आने लगे। कहा है—"भक्ष्यमाणो निराधान क्षीयते हिमवानपि" संचय न किया जाय और रोज उसमें से ले-लेकर खर्च हो तो कुवेर का खजाना भी नहीं ठहर सकता तब बड़े सेठ हीराचंद की संपत्ति कितनी और कै दिन चलती। जिस तालाब में पानी का निकास सब ओर से है, आता एक ओर से भी नहीं तो उसका क्या ठिकाना। बाबुओं को अब खर्च का तरद्दुद हर जून रहा करता था, और इसी चिंता में रहते थे कि किसी तरह कहीं से कुछ रक़म हाथ लगे, अस्तु।

अनंतपुर में नंदू के मकान से सटा हुआ कच्चा-पक्का एक दूसरा घर था; चूना पोती कबर के माफिक यह घर बाहर से तो बहुत ही रंगा चुंगा और साफ था पर भीतर से निपट मैला गंदा और सब ओर से गिरहर था। अब थोड़ा इस घर के रहनेवाले का भी परिचय विना दिये हमारे प्रबंधकी शृङ्खला टूटती है। यह घर बाहर से जो ऐसा रँगा-चुँगा और भीतर श्मशान सा शून्यागार था इसका कुछ और ही मतलब था और वह मतलब आपको तभी हल होगा जब आप मालिक मकान से पूरे परिचित हो जायँगे। मालिकमकान महाशय को आप कोई साधारण जन न समझ रखिये। कितना अङ्गरेजी और उस्तादी में यह बड़े-बड़े गुरुओं का भी

गुरू था। अनंतपुर के सब लोग इसे उस्तादजी कहा करते थे। हमारे पढ़नेवाले नंदू के चाल-चलन और शील-स्वभाव से भरपूर परिचित हो चुके हैं, पर वह चालाकी में इसके पसंगे में भी न था। नन्दू इसे चचा कहा भी करता था। सकलगुणवरिष्ठ हक़ीक़त में यह चचा कहलाने लायक था। नाम इसका बुद्धदास था और जैनधर्म पालन में अपने को बड़े-बड़े श्रावकों का भी आचार्य समझता था। स्वांस लेने और छोड़ने में जीवहिंसा न हो, इसलिये रातों-दिन मुँह पर ढाठा बाँधे रहता था, पर चित्त में कहीं दया का लेश भी न था। पानी चार बार छान कर पीता था पर दूसरे की थाती समूची की समूची निगल जाता था, डकार तक न आती थी। दिन में चार बार मंदिर में जाता था पर मन से यही विसूरा करता था कि किस भाँति कहीं से विना मेहनत, बेतरद्दुद, डले का डला रुपया हाथ लग जाय। साथ ही यह भी याद रखने लायक़ है कि आप निर्वंसी थे; आगे पीछे आपके कोई न था; कृपण इतने थे कि चार रुपये महीने में गुजर करते थे। आख़िर में दस पांच रुपया पास रख घड़ी दो घड़ी के लिये टाट बिछाय बाज़ार में जा बैठते थे और पैसों की शराफ़ी अपना पेशा प्रकट किये थे, पर छिपी आमदनी इसकी कई तरह की ऐसी थी कि उसका हाल कोई-कोई विरले ही जानते

थे। अनंतपुर में तो नंदू ऐसे दो ही एक इसके चेले थे, किंतु लखनऊ के चालाक और उस्तादों में इसकी धूम थी। भेख छिपाये दो एक परदेशी इसके फ़न के मुश्ताक टिके ही रहते थे। यह अपने को कीमियागर प्रसिद्ध किये था; पढ़ा लिखा एक अक्षर न था, पर खुशनवीसी में ईश्वर की देन उस पर थी। मानो इस फ़न को यह मा के पेट से ले उतरा था। किसी भाषा का कैसा ही बदखत या खुशखत लेख हो यह जैसे-का-तैसा उतार देता था। दस रुपये सैकड़ा इसकी उजरत मुक़र्रर थी, अर्थात् दस्तावेज़ वग़ैरह सौ रुपये का हो तो उसकी बनवाई यह दस रुपया लेता था, दो सौ का हो तो बीस, योंही सौ-सौ पर दस बढ़ता जाता था। और बहुत से फ़न इसे याद थे पर उन सबों के ज़िकिर से हमें यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। बुद्धदास शौक़ीन और तरहदारों में भी अपना औवल दरजा मानता था। उमर इसकी ४० के ऊपर आ गई थी; दाँत मुँह पर एक भी बाक़ी न बचे थे, तौभी पोपले और खोड़हे मुँह में पान की बीड़ियाँ जमाय, सुरमे की धज्जियों से आँख रंग, केसरिया चंदन का एक छोटा सा बिंदा माथे पर लगाय, चुननदार बालाबर अंगा पहन, लखनऊ के बारीक काम की टोपी या कभी-कभी लट्टूदार पगड़ी बाँध जब बाहर निकलता था तो मानो ब्रज का कंधैया ही अपने

को समझता था। होठ बड़े मोटे, रंग ऐसा काला मानों हब्श देश की पैदाइश का कोई आदमी हो, आँख घुच्चू सी, गाल चुचका, डील ठेंगना, बाल खिचड़ी उस पर ज़ुल्फ़, गरदन कोतह, मुँह घोड़े का सा लम्बा, शैतानी और फ़साद तथा काइयाँपन इसके एक २ अंग से बरसता था। यह विष की गांठ अनन्तपुर का रहनेवाला न था; थोड़े दिनों से यहाँ आकर बसा था। कहा है—"समानशीलव्यसनेषु सख्यम्" नन्दू और यह दोनों एक से शील सुभाव के थे और नन्दू की इससे पटती भी खूब थी इसलिए अचरज क्या कि उसी ने इसे कहीं बाहर से बुलाकर अपने घर के पास ही टिका लिया था। इसे नन्दू चचा कहता था इससे मालूम होता है कदाचित् कोई घर का रिश्ता भी इससे रहा हो! नन्दू भी जो चालाकी में एकता था, इस घात से इसे और टिकाये था कि इसके दूसरा कोई और था ही नहीं अंत को इस वज्र कृपण का धन सिवा मेरे कौन पा सकता है! जो हो एक रात को नन्दू ने आकर इसका किवाड़ खटखटाया, इसने चुपके से आय किवाड़ खोल दिया, दोनों भीतर चले गये और किवाड़ बंद कर लिया। नन्दू बोला—"चचा, बड़े बाबू ने आज आप को उस मामिले के लिये याद किया है—'आपकी उजरत कौड़ी ऊपर दिलवाऊँगा"। यह बोला—

"उजरत की कौन सी बात है। मुझे तुम से या बाबू से किसी तरह पर इनकार नहीं है।"

चौदहवाँ प्रस्ताव

बह बह मरैं बैलवा बैठे खायँ तुरङ्ग।

पाठक जन, आप लोगों को याद होगा हमारे इस क़िस्से के पहले प्रस्ताव का पहला दृश्य एक घुड़सवार था जो आधी रात के समय काग़ज़ का एक पुलिंदा लिए आया था और दरवाज़े का फाटक खुलवाय पुलिंदा दे चला गया था। हमारे पढ़नेवालों को अवश्य इस बात के जानने की रुचि हुई होगी कि यह काग़ज़ का पुलिंदा क्या था और क्यों ऐसा लाबड़तोड़ मँगाया गया।

हम ऊपर कह आये हैं सेठ हीराचंद का अनंतपुर में एक बहुत पुराना घराना था। हीराचंद से पाँच पुश्त पहले इसके पुरखों में से एक कोई मानिकचंद नाम का, घर से पाँच कोस पर अपने ही नाम का एक गाँव बसाय, बाग़, बग़ीचा, कुआँ, तालाब, रमने इत्यादि कई एक रमणीक सजावटों से इस स्थान को अत्यंत मनरमाने वाला कर आप वहीं जाय रहने भी लगा। उपरांत इसके कई एक लड़के, लड़कियाँ, पोते, परपोते हुए और यह सब भाँति रँजा-पुँजा होकर संसार में भाग्यवानी की सीमा को पहुँच गया था;

बल्कि बीच में हीराचंद के घराने की बड़ी अबतरी आ गई थी, यह तो हीराचंद ही ऐसा भाग्यवान् पुरुष हुआ कि पहले से भी अधिक इस घराने को चमका दिया। मानिकपुरवाले सेठों का तो कोई नाम भी न जानता था पर हीराचंद का विमल यश चहूँ ओर छाया था। जिस समय का हाल मैं लिखता हूँ उस समय मानिक चंद के घराने में बची बचाई पुरानी दौलत तो थोड़ी बहुत रह गई थी पर उसका सुख बिलसने वाला कोई न रहा। ७० वर्ष का एक बुड्ढा बच रहा; जैसे किसी हरे-भरे बाग़ के उजड़ जाने पर उसमें कटीले पेड़ का एक ठूँठ बच रहे। मानिकपुर भी उजड़ कर क़सबे से एक छोटा सा पचास घर का पुरवा रह गया, सिवाय इस बुड्ढे के मानिकचन्द की लड़कियों के सन्तान में भी एक आदमी बच रहा था। नाम इसका मिट्ठूमल, मानों नहूसत और दरिद्रता का एक पुतला था। इस बुड्ढे के घर से अलग एक दूसरे कच्चे मकान में यह रहा करता था; शकल से महादिहाती ग्रामीण मालूम होता था; न केवल सूरत ही शकल से यह दिहाती था, बरन् शऊर और ढंग भी इसके सब दिहातियों के से थे। दस पाँच बिगहे की खेती करता था और वही इसकी आजीविका थी। कभी-कभी अर्थपिशाच वह बुड्ढा भी इसकी कुछ सहायता

कर देता था। रिश्ते में वह उसका भानजा लगता था। नाम इस यत्तविक्त कृपण बुड्ढ का धनदास था। धनदास कुछ तो बुढ़ापे के कारण, जब कि और सब इन्द्रियाँ शिथिल हो केवल तृष्णा और लोभ ही को विशेष बढ़ा देती हैं और कुछ इस कारण से भी कि इस की बारी फुलवारी बिलकुल उजड़ गई थी ठूँठ सा अकेला आप ही बच रहा था, लड़के, पोते, नाती, अपनी स्त्री तक को इसने फूंक ताप्य था, इसलिये इसका जी सब भाँति बुझ गया था और कभी किसी बात के लिये हौसिला ही नहीं उभड़ता था; साँप सा खाट बिछाये उसी संदूक़ के पास पड़ा रहता था, जिसमें इसके सब काग़ज़, पत्र, रुपया, पैसा, नोट इत्यादि रक्खे हुये थे। सिवाय थोड़ी सी पुराने फ़ैशन की फ़ारसी के और कुछ पढ़ा लिखा न था, न इसे कभी किसी सभ्य समाज में शरीक होने या अच्छे सभ्य लोगों से मिलने का मौक़ा मिला था। बेईमानी या इमानदारी से जैसे बन पड़े केवल रुपया जमा होता चला जाय, इसी को यह बड़ी पंडिताई, बड़ी चतुराई, बड़ा धर्म समझे हुये था। इस दशा में मनुष्य को उदार भाव कहाँ से आ सकता है। न जानिये कितनों की तो इसने थाती पचा डाला था इन्हीं कारणों से इसके लिये अर्थ पिशाच की पदवी बहुत सुघटित बोध होती है। सत्तर वर्ष का हो ही गया था, एक-एक अँग पलित और जीर्ण हो चले थे,

रोगग्रसित रहा करता था। अचानक एक साथ ऐसा बीमार हो गया कि बिलकुल खाट से लग गया और मालूम होता था कि दो ही एक दिन में इसका वारा-न्यारा हुआ चाहता है। इसकी बीमारी की खबर बाबुओं को पहुँची। खबर पाते ही इन दोनों के जी में खलबली पड़ी। इसलिये नहीं कि बुड्ढा बीमार है चलकर उसकी कुछ सेवा टहल करें, या दवादारू की कुछ फिकर करें, बल्कि इसलिये कि जल्द चलकर जो उसके पास माल मताल है उसे जैसे हो अपने क़ब्जे में लावें। चलती बार नंदू भी इनके साथ हो लिया। दोनों का चोलीदामन का साथ था, भला यह क्योंकर बाबुओं को छोड़ अपनी चालाकी से चूकता और बाबू को भी इसके बिना कहाँ कल पड़ सकती थी। दो एक दिन तो धनदास बहुत ही बुरी हालत में रहा; लोग अंगुलियों घड़ी और लहमा गिन रहे थे कि इसकी हालत कुछ सुधरने लगी; दो तीन दिन तो पड़ा रहा उपरांत बोला भी और कुछ खाने के लिये इसने इच्छा प्रकट की। बाबू इसे चंगा होते देख मन में बड़े उदास हुए, सब उम्मीदें जाती रहीं और जो बात सोच रक्खी थी एक भी न हो सकी; पर ऊपर से ऐसी लल्लो पत्तो और चुना चुनी करते जाते थे कि धनदास को किसी तरह पर यह विश्वास न हुआ कि यह मेरा अनिष्ट सोच रहा है और मेरे साथ कुछ खेल खेला

चाहता है। इसके बाद भी अपनी दुराभिसंधि छिपाने को बाबू दो एक दिन वहाँ रहकर धनदास से बिदा हुए और नंदू को वहीं ही छोड़ गये। भीतर-भीतर इशारा तो कुछ और ही था पर ऊपर से धनदास के सामने नंदू से कहा "नंदू बाबू, मैं तो अब जाऊँगा पर तुम चचा साहब की अच्छी तरह फिकर रखना। देखो, इन्हें किसी तरह की तकलीफ़ न हो। इनके पथ्य और इलाज इत्यादि की तद-बीर रखना।" और धनदास से बोला "चाचा साहब, क्या करूँ मैं बड़ा लाचार हूँ मेरे न रहने से कोठी तथा इलाक़ों का सब कारबार बंद होगा। मैं नंदू बाबू को छोड़े जाता हूँ, यह मेरे बड़े रफ़ीक़ हैं, आपकी सेवा टहल की सब फिकिर रक्खेंगे और किसी तरह की तकलीफ़ आपको न होने पावेगी। मैं घुड़सवार एक हलकारे को छोड़े जाता हूँ जब आपको किसी बात की जरूरत आ पड़े तुरंत इसे भेज मुझे इत्तला देना।" यह कह बुड्ढे को सलाम कर यह वहाँ से बिदा हुआ।

नंदू जो चालाकी में पूरा उस्ताद था और अपने को इसमें एकता समझता था ऐसे ढंग से रहा और ऐसी सेवा टहल की कि धनदास का यह बड़ा विश्वासित हो गया यहाँ तक कि इसने अपनी ताली कुञ्जी सब इसके सिपुर्द कर रक्खा। अपने पुराने नौकरों की भी बात न मान जो यह कहता वैसा ही

धनवास करने लगा। एक तो बूढ़ा था दूसरे बीमारी के कारण चिरचिरा हो गया था नंदू को यह एक बड़ी हिकमत हाथ लगी कि जब इसे किसी पर झुँझलाते और चिरचिराते देखता तो इश्तियालक देने की भाँति दो एक कोई ऐसी बात कह देता कि इसकी चिरचिराहट और चौगुनी बढ़ जाती थी। जिस पर यह झुँझला उठता था उसकी मानो शामत आई, और इस झुँझलाहट में वह चिल्लाता था, रोने लगता था यहाँ तक कि मूड़ भी पीट डालता था। ऐसे मौक़े पर नंदू को अपनी खैरख्वाही जाहिर करने का मौक़ा मिलता था। निदान यह बुड्ढा बिलकुल सठिया गया। होशहवास भी दुरुस्त न रहते थे। मृत्यु के दिन समीप होने के जितने लक्षण होने चाहिये सब इसमें आ गये। इस प्रकार के कृपण कदर्य जीवन से जीनेवालों का यही तो परिणाम होता है, जो मानो आदमी के भले बुरे होने की बड़ी भारी परख है। सुकृती मनुष्य की मरण-अवस्था ऐसी सुख की होती है कि किसी को मालूम नहीं होता कि कब उसके चोला से जान निकल गई; आनन फानन पलक भँजते-भँजते शरीर से उसके प्राण की यात्रा होती है। वह दुष्कृती, जैसा यह बुड्ढा था, महीनों तक पड़े अनेक यातना और यंत्रणा भोगते हैं पर प्राणवियोग शरीर से नहीं होता।

एक दिन रात को यह कहरता-कहरता सो गया और इसके सब पुराने नौकर भी नींद के बस हो गये कि नन्दू ने ताली का गुच्छा, जो इसकी तकिया के नीचे रक्खा रहता था, धीरे से खींच वह संदूक जिसे धनदास अपना प्राण समझता था आहिस्ते से खोल, काग़ज़ का पुलिंदा उसमें से निकाल लिया और संदूक फिर बंदकर ताली वैसे ही तकिया के नीचे रख दिया। इसने पुलिंदा उसी अहल्कार को दिया और कहा "तुम अभी जाकर इस पुलिंदे को बाबू साहब को दे आओ, पर ख़बरदार होशियार रहना, यह बड़े काम का काग़ज़ है, इसमें से कोई भी गिर जायगा तो बड़ा हर्ज होगा।" अहल्कारा सलाम कर पुलिंदे को अपनी कमर में कस रवाना हुआ। नंदू भी जाकर चुपके सो रहा, पर अपनी इस अभिसंधि में कृतकार्य होने की ख़ुशी में देर तक इसे नींद न आई, सोचता था "लाखों की जायदाद मालमताल अब मेरे बाबुओं को बेखरखसे हाथ लग जायगी, बाबू से चहारुम मेरा ठहर गया ही है, तब क्या हमी हम कुछ दिनों में देख पड़ेंगे। चहारुम क्या यह बिलकुल माल मैं अपना ही समझता हूँ, क्योंकि बाबुओं को तो मैंने अपने जाल में फँसा ही रक्खा है। बाबू के पास जो कुछ है उसके सब कर्ता-धर्ता सिवाय मेरे दूसरा है कौन। हा! हा! हा! मैं भी अपने फ़न में क्या ही

उस्ताद हूँ, कैसी अपनी ढाँक जमा रक्खी है कि अब बाबू के दरबार में मैं ही मैं हूँ। उस उजड्ड पंडित चंदू ने हरचंद चाहा, कितना ही फटफटाया, पर उसकी एक भी दाल न गली। सब तरह पर बाबुओं को मैंने अपनी मूठी में करी तो लिया। छि: ! यह पंडित भी अहमक़ों की जमात का एक नमूना देख पड़ा; बदतमीज़ी की यह बानगी है मानो शऊर और समझ के चश्मे पर बड़ा भारी पत्थल का ढोंका रख दिया गया हो। ख़ूबी यह कि कौड़ी-कौड़ी मात हो रहा है फिर भी अब तक अपनी शरारत से बाज़ नहीं आता। मैं भी मौक़ा तज-वीज़ रहा हूँ बचा को ऐसा फँसाऊँगा कि अब की बार जड़ पेड़ से उखाड़ डालूँगा और अनंतपुर में कहीं इसका निशान भी न रह जायगा। मैंने एक बार पहले भी संदूक़ को खोला था ताकि देखूँ इसमें क्या है, सिवाय और चीज़ों के उस पुलिंदे को भी पाया, जिसमें पचास हज़ार के कई क़िता सिर्फ़ नोट के उसमें थे। दस हज़ार का एक क़िता तो मैंने अपने लिए अलग उड़ा रक्खा। और भी कई एक दस्तावेज़ उसमें हैं। यहाँ से चलकर मैं सबों को ठीक करूँगा। इसीलिए तो बुद्धदास को अपने घर के पास ही टिका रक्खा है और सब तरह की नाज़बरदारी उसकी उठा रहा हूँ। ख़ास कर उस वसीयत को दुरुस्त करना है जिसमें बुड्ढे ने मिट्ठूमल के

लिए कुछ इशारा कर दिया है। मिट्ठू ऐसे खूसट देहक़ानी को इतनी क़सीर रक़म मिलकर क्या होगी, इसे तो हम लोगों के हाथ में आना चाहिये। बाबुओं का रंग-ढंग देख घर की सब रक़म बड़ी सिठानी ने दाब रक्खी, दोनों बाबू माँ के मरने के वादे पर क़र्ज़ ले लेकर इन दिनों अपना काम चला रहे हैं। अब इतनी क़सीर रक़म एक साथ मिल जाने से कुछ दिनों के लिये सुबीता हो गया। खैर देखा जायगा इसमें शक नहीं आज मैं महीनों की कोशिश और तदबीर के बाद आखिर कामयाब हुआ।" इतने में उसे नींद आ गई और वह सो गया।

पन्द्रहवाँ प्रस्ताव

"नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति॥ (मनुः)"

अधर्म करने का फल अधर्मकारी को वैसा जल्दी नहीं मिलता जैसा पृथ्वी में बीज बो देने से उसका फल बोनेवाले को थोड़े ही दिन के उपरांत मिलने लगता है; किंतु अधर्म का परिपाक धीरे-धीरे पलटा खाय जड़-पेड़ से अधर्मी का उच्छेद कर देता है।

अनंतपुर से आध मील पर सेठ हीराचंद का बनाया हुआ

नंदन-उद्यान नाम का एक बाग़ है। हीराचंद के समय यह बाग़ सच ही नंदन वन की शोभा रखता था। सब ऋतु के फल-फूल इसमें भरपूर फलते-फूलते थे। ठौर-ठौर सुहावनी लता और कुंज वृंदावन की शोभा का अनुहार करते थे। संगमर्मर की रविशों पर जगह-जगह फौआरे जेठ बैसाख की तपन में सावन भादों का आनंद बरसा रहे थे। एक ओर इस बाग़ के बड़ी लंबी-चौड़ी बारह दुआरी थी, जिसमें हीराचंद नित्य अपने काम-काज से सुचित्त हो संध्या को यहाँ आते थे। पंडित, साधु, अभ्यागत तथा गुणी लोगों से यहीं मिलते थे और अपने वित्त के अनुसार सबोंका थोड़ा या बहुत जो कुछ हो सकता सत्कार सम्मान करते थे। अस्तु, हीराचंद की बात उन्हीं के साथ गई अब उसको गाई गीत के समान फिर फिर गाने से लाभ क्या ?

आगे के दिन पाछे गये हरि से कियो न हेत ;
अब पछिताये क्या भया चिड़िया चुनगई खेत।

जिस फलवंत धरती में अमृत रसवाले दाखफल और केसर उपजते थे उसी में काल पाय ऊँठकटारे और अनेक कटैले पेड़ जम आये तो इसमें अचरज की कौन सी बात है ! कालचक्र की गति सदा एक सी रहे तो वह चक्र क्यों कहा जाय—"नी-चैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।"

"गतः सकालो यत्रास्ते मुक्तानां जन्म वक्षिपु ।
उदुम्बरफलेनापि स्पृहयामोऽधुना वयम् ॥"

बरसात का आरम्भ है। रिमझिम-रिमझिम लगातार पानी की छोटी-छोटी फूही ग्रीष्मसंतापतापित वसुधा को सुधादान के समान होने लगीं। काली-काली घटायें सब ओर उमड़-उमड़ बरसने लगीं। मानो नववारिद वन उपवन स्थावर-जंगम जीव-जन्तु मात्र को बरसात का नया पानी दे जीवदान से जितने दानी और वदान्य जगत् में विख्यात हैं उनमें अपना औवल दरजा क़ायम करने लगे ? या यों कहिये कि ये बादल जालिम कमबख्त जेठ माह के जुल्म से तड़पते, हाँपते, पानी-पानी पुकारते जीवों को देख दया से पिघल खिन्न हो आँसू बहाने लगे। नदी नाले उमड़-उमड़ अपना नियमित मार्ग छोड़ वैसा ही स्वतंत्र बहने लगे जैसा हमारे इस कथानक के मुख्य नायक दोनों बाबू बेरोकटोक विवेक के मार्ग को छोड़, शरम और हया से मुँह मोड़, दुस्सङ्ग के प्रवाह में बह निकले। विमलजलवाले स्वच्छ सरोवर जिनमें पहिले हंस, सारस, चक्रवाक कलध्वनि करते हुए विचरते थे, उनके मटीले गंदले पानी में अब मेंढक वैसे ही टर-टर करने लगे जैसा इन बाबुओं के दरबार में, जहाँ पहिले चंदू सा मतिमान् सुजान महामान्य था, वहाँ

नंदू तथा रग्घू सरीखे कई एक ओछे छिछोरे बाबू को दुर्व्यसन के कीचड़ में फँसाय आप क़द्र के लायक़ हुए। सूर्य, चंद्रमा, तारागण सबों का प्रकाश रात दिन मेघ से ढंप मंद पड़ जाने से जुगुनू कीड़ों की क़द्र हुई, जैसा दुर्दैव-दलित भारत की इस आरत दशा में चारो ओर जब अज्ञान-तिमिर की घटा उमड़ आई तो साधु, सदाचारवान्, सत्पुरुष कहीं दर्शन को भी न रहे; झूठे, पाखंडी, दुराचारी, मक्कार पुजवाने लगे। असती जारिणी के कटाक्ष के समान सौदा-मिनी अभ्रपटल में चमक-चमक छिपती हुई मानो इस बात को प्रकट करती है कि चरित्र में दाग़ लग जाना ऐसी ही बुरी बात है कि मुँह छिपाना पड़ता है; अथवा यह बिजुली की चमक मानों बादलों के नेत्र हैं, जिनके द्वारा रात में अपने यार के घर जाती हुई अभिसारिका नायिका का मुख देख उन्हें यह भ्रम होता है कि निरंतर की धारापात में चंद्रबिंब आकाश से पृथिवी पर गिर गया क्या? हाय! ग़ज़ब हुआ, यही सोच में भर बड़ी ज़ोर से चिल्लाने लगते हैं, यह गरजने का शब्द उन्हीं बादलों का चौंक कर चिल्लाना है। दिन में सूर्य का, रात में चंद्रमा का दर्शन किसी-किसी दिन घड़ी दो घड़ी के लिये वैसे ही घुणाक्षरन्याय सा हो गया, जैसा अन्यायी राजा के राज्य में न्याय और इन्साफ़ कभी-

कभी बिना जाने अकस्मात् हो जाता है। पृथ्वी पर एकाकार जल छा जाने से भूभाग का सम विषम-भाव, तत्त्वदर्शी शांतशील योगियों की चित्तवृत्ति के समान, जाता ही रहा। हिंदुस्तान में बरसात का मौसिम बड़े आमोद-प्रमोद का समझा जाता है, और उस समय जब इस उन्नीसवीं सदी की आसाइशें और आराम रेल, तार इत्यादि कुछ न थे सबी लोग बरसात के सबब अपना-अपना काम-काज छोड़ देने को लाचार हो जाते थे। यही कारण है कि जितने तिहवार और उत्सव सावन भादों के दो महीनों में होते हैं उतने साल भर के बाक़ी दस महीनों में भी नहीं होते। उद्यमी और कामकाजी लोग भी जिनको बिना कुछ उद्यम और परिश्रम किये केवल हाथ पर हाथ रख बैठे रहने की चिढ़ है और एक क्षण भी ऐसा व्यर्थ नहीं गँवाया चाहते जिसमें वे अपने पुरुषार्थ का कुछ नमूना न दिखलाते हों वे वर्षा ऋतु में शिथिल और ढीले पड़ जाते हैं; तो आवारगी और व्यसन के हाथ में अपने को सौंपे हुए इन दोनों बाबुओं का क्या कहना ! जिनको हर दम कोई नई दिल्लगी नये शग़ल की तलाश रहती है। मसल है "एक तो तित लौकी दूजे चढ़ी नीम"—

"कपिरपि च कापिशायन-

मदमत्तो वृश्चिकेन संदष्टः

अपि च पिशाचग्रस्तः
किमु मो वैकृतं तस्य ॥"

रईस और प्रतिष्ठित लोगों में बरसात के दिनों में बाहिरी ओर बाग़-बग़ीचों में आमोद-प्रमोद का आम दस्तूर हो गया है। सुबीतेवाले सबी अपने इष्ट-मित्रों को साथ ले बहुधा बग़ीचों में जाय नाच, रंग, खाना, पीना दो एक बार अवश्य करते हैं। ये दोनों बाबू तो जब से बरसात शुरू हुई तब से रातो दिन बग़ीचे ही में जा रहे, कभी अठवें दसवें घड़ी दो घड़ी के लिये घर आते थे। एक दिन साँझ हो गई थी; घटा चारों ओर छाई हुई थी; राह बाट कुछ नजर न पड़ती थी; बग़ीचे के बाहर खेतों की मेड़ पर ठौर-ठौर खद्योत-माला हरी-हरी घासों पर हीरा सी चमक रही थी; छिन-छिन पर गरजने के उपरांत काली-काली घटाओं में दामिनी क्रोधित कामिनी सी दमक रही थी; सब ओर सन्नाटा छाया हुआ था; केवल नववारिद समागम से प्रफुल्ल भेकमंडली नाऊ की बरात के समान सब अलग-अलग ठाकुर बने टर-टर ध्वनि से कान की चैलियाँ झार रहे थे। एक ओर झींगुर अलग अपनी वाचाट वक्तृता से दिमाग़ चाटे डालते थे। पेड़ के पत्तों पर गिरने से वर्षा के जल का टप-टप शब्द भी सुनाई देता था। कभी-कभी पेड़ पर बैठे पखेरुओं का ओवे

पंख झारने का फड़-फड़ शब्द कान में आता था। बारह दुआरी भीतर बाहर सजी और झाड़ फनूसों से आरास्ता थी; रोशनी की जगमगाहट से चकाचौंधी हो रही थी; जशन की तैयारी थी। नंदू, हुमा और हकीम तीनों बैठे प्याले पर प्याला ढलका रहे थे। दोनों बाबुओं की हुस्नपरस्ती में धूम थी, इसलिये तमाम लखनऊ और दिल्ली के हसीन यहाँ आ जुटे थे।

बुद्धू पाँड़े अफ़ीम के झोंक में ऊँघता तलवार की मुठिया हाथ में कस के गहे डेहुड़ी पर बैठा हुआ मानो बर्राय रहा था—"कहाँ-कहाँ के चौपट चरन इकट्ठे भये हन, अस मन होत है कि इन हरामखोरन का अपन बस चलत तो काला-पानी पठे देतेन। हाय ! यह वही बाग और बारहदुआरी अहै जहाँ इनहिंन बरसात के दिनन मा नित्य वेदपाठ और वसंत पूजा होत रही। अनेकन गुनी जनन केर भीर की भीर आवत रही और बड़े सेठ सबन केर पूजा सम्मान करतु रहे, तहाँ अब भाँड़, भगलिये, रंडी, मुंडी पलटन की पलटन आय जुरे हैं। एक बार एक मुसलटा बारहदुआरी के भीतर घुस गवा रहा तब बड़े सेठ साहब सगर बारहदुआरी धोआइन रहा, वहीं अब निरे मुसलमानै मुसलमान भरे हैं। न जानै इन दोनों बाबुअन का का है गवा। नंदुआ का सत्यानास होय कैसा जादू कर दिहिस है कि चंदू महाराज और सेठानी बहू हुजार-

हजार उपाय कर थकीं कोउनौ भाँति दोनों बाबू राह पर नहीं आवत। वा दिना बाबू बुद्धदास का बुलवाइन रहा, हम रात के वहिके घर गइन रहा पर एहका कुछ भ्याद न खुला, ओकर बाबू से गिट्ट पिट्ट अच्छी नहीं। ऊ तो बड़े कजाक और जालिया है।" हमने अपने पढ़नेवालों को इस सच्चे स्वामि-भक्त का परिचय एक बार और दिलाना इसलिये उचित समझा कि यह मनुष्य भी हमारे इस क़िस्से का एक प्रधान पुरुष है; यह आगे बड़ा काम देगा इसलिये इसे हमारे पाठक याद रक्खें।

अब और एक नये आदमी का परिचय यहाँ पर देना मुनासिब जान पड़ता है क्योंकि ऐसे दो एक और लोगों को बिना भरती किये हमारे कथानक की शृङ्खला न जुड़ेगी। वयक्रम इस पुरुष का ३५ और ४० के भीतर था, नाम इसका पञ्चानन था। पञ्चानन के जोड़ का दिल्लगीबाज और रसीली तबियत का आदमी कम किसी ने देखा या सुना होगा। मनुष्य चाल-चलन का किसी तरह बुरा न था बल्कि चंदू सरीखे शुद्धचरित्र की मैत्री के भरपूर लायक़ था और कसौटी के समय चालचलन की शिष्टता भी इसमें चंदू ही के टक्कर की थी, इसी से चंदू से इसकी पटती भी थी और अनंतपुर की छोटी सी बस्ती में दोनों का घर भी

एक ही जगह बरन् सटा-सटा था। दोनों के घर के बीच केवल एक दीवालमात्र का अंतर था। गंभीरता या संकोच का यह जानी दुश्मन था। मुन्सिफ़ी तक की मुख्तारी एक मामूली ढर्रे पर कर लेना, जो कुछ मिले उतने ही से अपने लड़के बालों को खाने-पीने से सब भाँति प्रसन्न रखना ; "न ऊधो के देने न माधो के लेने" और साँझ को निश्चिंत लंबी तान सो रहना केवल इतने ही को यह अपने जीवन का सार समझता था। अच्छा खाना अच्छा पहनने का इसे हद से ज़ियादह शौक़ था, तेहवार और कचहरी में तातील का बड़ा मुश्ताक़ था। किसी के यहाँ ज़ियाफ़त में शरीक होने का इसे बड़ा हौसिला था। किसी के यहाँ कुछ काम पड़ने पर दावत खाना या उसको बेवकूफ़ बनाय ज़ियाफ़त दिलवाने में यह बहुत कम फ़र्क़ समझता था। सारांश यह कि इसका मुख्य उद्देश्य यही था कि जिसमें कुछ हँसी व दिलबहलाव हो वही करना। हर हाल में खुश रहना और दूसरों को खुश रखना इसका सिद्धांत था। इसी से क्या छोटे, क्या बड़े सब उमर के लोगों से यह मिलता था और उचित तथा योग्य बरताव से सबोंको प्रसन्न रखता था। जिस तरह अपने हम-उमरवालों से मिलता था उसी तरह कम उमरवाले लड़कों से भी मिल उनको राज़ी कर देता था। बरन् इसके मसख़रे-

पन से बूढ़े लोग भी खुश रहते थे और कोई इसे बुरा न कहता था। यह बात तो कभी इसके मन में आती ही न थी कि ऊँचे पद से और रुपए के कारण मनुष्य की प्रतिष्ठा और इज्जत में कुछ अन्तर आ सकता है। इसलिये जहाँ कहीं कुछ चुटकी लेने का अवसर मिलता था यह विना कुछ बोले नहीं रहता था, चाहो वह आदमी कौड़ी-कौड़ी का मुहताज हो या करोड़पती क्यों न हो। संसार में यदि किसी से दबता था, या किसी की बुजुर्गी करता था तो केवल चन्द्र-शेखर की। पञ्चानन के मन में चन्द्रशेखर का ऐसा रोब जमा हुआ था जिसे ख्याल कर अचरज होता था। यद्यपि चन्दू से भी कभी-कभी यह दिल्लगी छेड़ बैठता था किन्तु दो एक गम्भीर विचार की भावना कभी को कुछ देर के लिये इसके मन में अवकाश पाती थी तो चन्दू ही के बार-बार की नसीहत और उपदेश से! मसखरापन का बर्ताव यह साधारण रीति पर सबके साथ रखता था किन्तु मन में सोचता था कि हम बड़े गौरव के साथ लोगों से बर्तते हैं। इस तरह यह लोगों के बीच अपने को खिलौना बनाये था सही, पर सबोंका सेवक और सबसे छोटा अपने को मानता था। सर्वसाधारण में यह परोपकारी विदित था और अपने इख्तियार भर जो किसी का कुछ भला हो सके तो उससे मुँह नहीं मोड़ता था।

घमंड का इसमें कहीं लेश भी न था, सूरत भी भगवान् ने इसकी ऐसी गढ़ी थी कि इसे देख हँसी आती थी। बड़ी लंबी नाक, नीचे को झुके हुए छोटे-छोटे मोछे, पस्त क़द, पेट के ऊपर दोनों खड्डुदार छाती जैसा किसी गहरी नदी के ऊपर आगे की ओर झुका हुआ कगारा हो। बाल सुफ़ेद हो चले थे पर ज़ुल्फ़ सदा कतराये रहता था। अस्तु, आज के जलसे में यह भी शरीक था। वहाँ हुमा को देख वह बोला "बाबू ऋद्धिनाथ, तुमने ऐसा चुंबक पत्थर अपने पास रख छोड़ा है कि किस पर इसकी कोशिश का असर नहीं पहुँच सकता? ठीक है ऐसी सोने की चिड़िया आपके हाथ लगी है तभी तो आपने हम लोगों को बिलकुल भुला दिया।"

ऋद्धिनाथ—ख़ैर, गड़े मुरदे न उखाड़िये बतलाइये अब आप लोगों की क्या ख़ातिरदारी की जाय (जूही का एक-एक गजरा सबोंके गले में छोड़) चलिये, आप लोगों को बाग़ की सैर करा लावें (एक बड़ी भारी संदूक दो कुलियों के सिर पर लदाये हुये रग्घू को दूर से आता देख) लाओ-लाओ अच्छे वक़्त से लाये।

सब लोग—"यह क्या है? यह क्या है?" (संदूक खोल सब लोग एक-एक बाजा उठा लेते हैं)—वाह रे! रग्घू महराज, अच्छी जून यह तुहफ़ा तुम लाये और क्या हिसाब

से लाये कि डेढ़ कोड़ी बाजे और यहाँ डेढ़ ही कोड़ी बाजे के बजवइये भी।

नंदू—(ऋद्धिनाथ से) बाबू साहब, हमने कहा था बाजे हरगिज़ जियादह न होंगे बल्कि हुमा का हाथ फिर भी बाजा से खाली ही रहा।

पंचानन—अच्छा आप लोग अपना-अपना बाजा ले चुके हों तो हम "प्रोपोज़" करते हैं कि हुमा, हम सब लोग, बाजा बजानेवालों की बैंडमास्टर की जाय।

नंदू—मैं आपके इस प्रोपोज़ल को सेकंड करता हूँ। (मन में) हुमा या ये दोनों बाबू सब इस वक़्त मेरे क़ब्ज़े में हैं, हुमा में हुमापन पैदा करनेवाला भी मैं ही हूँ। आज यह पुराना चंडूल पंचानन अच्छा आ फँसा। यह उस गँवार पंडित का जिगरी दोस्त है। यह भी मेरे दल में आज आ शरीक हुआ इस बात की मुझे बड़ी खुशी है। बुद्धदास के ज़रिये मैंने जो कार्रवाई की थी उसमें भी मैं भरपूर कामयाब हुआ, सच है; ऐब करने को भी हुनर चाहिये।

बुदधू पाँड़े अफ़ीम के झोंक में एक बारगी चौंक पड़ा और अपने सामने पुलिस के दो आदमियों को बातचीत करते देख चौकिआ हो पूछने लगा "तुम कौन हो? किसके पास आये हो?"

पुलिस—सेठ हीराचंद के वलीअहद ऋद्धिनाथ व नंदू व बुद्धदास तीनों कहाँ हैं? उनके नाम का वारंट है तीनों फ़ौजदारी सिपुर्द हुए हैं। साथ हथकड़ी के तीनों को अदालत में हाज़िर करने का हुक्म हमें है।

बुद्धू—(मन में) हमने तो पहले सोचा था कि इन चौपटहों का साथ हमारे बाबू को किसी दिन ख़राब करेगा। जो बात आज तक इस घराने में कभी नहीं हुई उसकी नौबत पहुँची तो अब बाक़ी क्या रहा। सच है बुरे काम का बुरा अंजाम। देखिये आगे अब और क्या-क्या होता है?

सोलहवाँ प्रस्ताव

छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति

"मेरे मन कुछ और है कर्त्ता के कुछ और।"

सब लोग अपनी-अपनी पसंद के माफ़िक़ स्वच्छंद आमोद प्रमोद में लगे हुए थे। एक ओर प्याले पर प्याला चल रहा था, दूसरी ओर पौ छक्के का शग़ल शुरू था। एक ओर सारंगी और सरोद का सुर मिलाया जाता था दूसरी ओर हुमा और आशिकतन झूलने झूल रहे थे कि अचानक इस ख़बर के ज़ाहिर होते कानो कान सब आपस में कानाफूसी करने लगे। एकबारगी सन्नाटा छा गया। नंदू का चेहरा ज़र्द

पड़ गया। वहाँ से निकल जाने की तदबीर सोचने लगा। दोनों बाबू भी घबड़ा गये और इस ख्याल में थे कि नंदू उनका दिली खैरख्वाह है, अपने ऊपर सब ओढ़ लेगा, उन दोनों पर आँच न आवेगी। इधर नंदू इस फिकिर में लगा कि जिस इलज़ाम पर वारेंट आया है वह इन बाबुओं पर थाप दें तो हम साफ़ बरी रहें। सच है "आपत्सु मित्रं जानीयात्" और इसी यत्न में लगा कि किसी तरह से चंपत हों। अस्तु, और सब लोग किसी न किसी बहाने वहाँ से खिसकने लगे पर नंदू की कोई घात निकलने की नहीं लगती थी। इतने में घर से एक दूसरी ख़बर आई—"सरस्वती बहुत बीमार हो गई है, उलटी साँस चल रही है, जल्दी घर चलो।"

छोटे बाबू की दो वर्ष की लड़की सरस्वती दोनों बाबुओं को बहुत हिली थी। घर में कोई छोटा लड़का न रहने से सब उसे बहुत प्यार करते थे, और वह घर भर की खिलौना थी। बाबू को दोचंद तरद्दुद में पड़े देख सब लोग बड़े फिकिर में हुए, किंतु नंदू के आकार और चेष्टा से मालूम होता था कि इसे बाबुओं के साथ कोई सहानुभूति नहीं है केवल अपने बचाव के प्रयत्न में अलबत्ता लग रहा है। पंचानन, जो कभी बाबुओं के किसी जलसे और नाच रंग में आज तक शरीक

न हुआ था, और बाबू के दिली दोस्तों से इसकी जियादह रब्त जब्त न रहने से अच्छी तरह उनके गुप्त चरित्र और छिपे चाल चलन से वाक़िफ़ न था, नंदू की उस समय की रुखाई से अचरज में आया। यद्यपि पंचानन तरद्दुद और फ़िकर से कोसों दूर हटता था पर इस समय बाबुओं को अत्यंत उदास, व्याकुल और चिंतामग्न देख यह भी सन्नहटे में आ गया। कुछ इस कारण भी कि चंदू का जिसे यह सबसे अधिक मानता था सेठ के घराने से बहुत लगाव समझ दोनों के साथ इसे हमदर्दी हो आई; नंदू पर इसे क्रोध भी आया कि यह धूर्त नमकहराम इस मुसीबत और वज्रकुलिश से किसी तरह रिहाई न पा सके और इसके फँसाने की फ़िकिर में हुआ। पंचानन मुंसिफ़ी तक की वकालत की सनद हासिल किये था इसलिये क़ानून की बारीकियों को भी भरपूर समझता था। नंदू को बातों में फँसाय बाबुओं को आँख के इशारे से बाग के पिछवाड़े की खिड़की से बाहर निकाल दिया।

पंचानन—(नंदू से) बाबू नंदलाल, आप ऐसे सयाने कौआ इन बगुलों के दल में कैसे फँसे? आपको तो अपनी चालाकी का दावा था। "क्या खूब फँसा क़फ़स में यह पुराना चंडूल—लगी गुलशन की हवा दुम का हिलाना गया भूल।" सच है, सयाना कौआ जरूर गलीज खाता है। खैर, अब

बतलाओ उस्तादों को क्या नजर करोगे, हम इसमें पैरवी कर तुम्हें अभी इस मुसीबत से रिहा करें।

नंदू—आप यक़ीन न लावेंगे मेरा इसमें कोई कुसूर नहीं है, इन बाबुओं ने मुझे भी फँसाय ख़राब किया।

पंचानन—जी! आप ठीक कह रहे हैं। भला किसे शामत सवार है कि आपकी बात पर यक़ीन न लावे। हम क्या हमारे बाप दादा अपने-अपने वक़्त में सब आप पर यक़ीन लाये हुए थे। वल्लाह, ऐसे नये नबी पर जो यक़ीन न लाया तो कौन दूसरे पैग़म्बर आवेंगे जो हम ऐसे गुनहगारों का गुनाह माफ़ करेंगे। हाल में हमारे प्रपितामह की भेजी हुई हमारे नाम की एक चिट्ठी आई है कि बाबू नंदलाल जो कहें उसमें एक शोशा भी ग़लत न समझो। तब भला मुमकिन है कि आपकी बात का यक़ीन न करें?

नंदू—आप तो ठट्ठों में उड़ाते हैं, यह मौक़ा दिल्लगी का नहीं है।

पंचानन—जी नहीं, दिल्लगी की इसमें कौन सी बात है, उस वक़्त दिल्लगी अलबत्ता थी जब ख़ूब गुलछर्रे उड़ते थे। ख़ैर बाबुओं के बचाव की सूरत बिलफ़ैल किसी न किसी ढंग से हो जायगी। बाबू दोनों चंपत भी हो गये, अब आप अपनी कहिये?

नंदू—(सब ओर देख) (स्वगत) हाय ! बाबू क्या चले गये तो अब यह सब बला हमीं को सहना पड़ेगी। पंचानन चालाकी में हमसे भी दूना जाहिर होता है और हमको फँसाने के लिए इसने मन में तय कर लिया है तो अब हमारा निस्तार कठिन मालूम होता है। खैर, अब इसी की खुशामद करें (प्रगट) बाबू पंचानन, आप चाहें तो मुझे भी यहाँ से निकाल सकते हैं मैं आपका बड़ा एहसानमंद हूँगा।

पंचानन—आप कुछ संदेह न करें, मैं आपकी भरपूर खबर लूँगा (वारंटवालों को बुलाकर) बाबू ऋद्धिनाथ तो यहाँ नहीं हैं और यहाँ आये भी नहीं। बाबू नंदलाल अलबत्ता हाजिर हैं इन्हीं से बुद्धदास का भी पता आपको लग जायगा। (नंदू से) बाबू नंदलाल अब कहिये जो कुछ आप को कहना हो; बुद्धदास के गिरफ़्तारी के जिम्मेवार भी आप ही हैं। (दारोगा से) दारोगा साहब, बाबू नंदलाल बड़े रईस हैं इनके साथ किसी तरह की रियायत हो सकती हो तो मैं सिफ़ारिश करता हूँ कर दीजिये। क्योंजी बाबू नंदलाल, यही आपका मतलब न था कि मैं अपनी ओर से आपके लिये न चूकूँ ? खैर, मैं अब जाता हूँ दारोगा साहब और आप दोनों आपस में यहाँ निपटते रहिए।

सत्रहवाँ प्रस्ताव

अपना चेला होत नहिं प्रभु चेला तत्काल।

पंचानन नंदू को उसी बाग़ में पुलिस के दारोग़ा से मिलाय आप चंपत हुआ। दारोग़ा अपने ढंग पर था कि इससे कुछ पुजावें भी और बात ही बात में इससे कबुलवा भी लें कि "मैं क़ुसूरवार हूँ।" इधर नंदू अपने ढंग पर था कि दारोग़ा को ज़रा भी उस बात की टोह न लगे जिसके लिए वारंट आया है और फँसे तो हम और बाबू दोनों इसमें शामिल रहें। बाबू भी शरीक रहेंगे तो मुक़द्दमे की भरपूर पैरवी की जायगी। मैं अकेला पड़ गया तो बेमौत की मौत मरा।

नंदू—(मन में) पंचानन का यहाँ से चला जाना मेरे हक़ में निहायत मुज़िर हुआ। बेशक मैंने ग़लती की जो इसे अपनी जमात में शरीक किया। मैंने कुछ और सोचा यहाँ कुछ और ही बात हो गई। यह तो मैं जानता था कि यह उसी चंदू का दोस्त है लेकिन मैंने समझा कि यह ठठोल, दिल्लगीबाज़, मुफ़्त-ख़ोरा है; हमेशा अपने को ख़ुश रखना किसी दूसरे को फँसाय दिल्लगी देखना और हमेशा आराम से ज़िंदगी काटना इसका मा़कूला है, इसी से मैंने अपनी जमात में इसे बुलाया भी, पर इस वक़्त की कार्रवाई से मैं इसे पहचान गया। यह चंदू का

निहायत सच्चा दोस्त है, चालाक तो पंचानन बेशक है किंतु बड़ा खरा बेलौस और सच्चा आदमी है। जान पड़ता है यह मेरे आमालों को जानता है क्योंकि अब मैं खयाल करता हूँ तो इसे छनक मेरी ओर से तभी से थी जब से इसने यहाँ क़दम रक्खा, क्या तअज्जुब यह वारेंट भी चंदू और पंचानन दोनों की साँट में आया हो। ख़ैर, यहाँ तो मैं इस मरदूद दारोग़ा से किसी भाँति निपट लेता हूँ पर मेरे घर पर मेरी ग़ैरहाज़िरी में यह पंचानन और चंदू दोनों मिल कोई फ़साद बरपा करेंगे कि मुझे ज़रूर फँस जाना पड़ेगा। बुद्धदास का भी नाम इस वारेंट में है, उसे बिलकुल इसकी खबर नहीं है, उसको भी चंदू तके हुए हैं। बाबू को तो वह किसी न किसी तदबीर से बचा लेगा, यह मुसीबत मुझे और बुद्धदास दोनों को भुगतना पड़ेगी। ख़ैर तो अब इसे टटोलें, देखें यह किसी तरह मेरे चंगुल में आ सके तो बहुत अच्छा हो (प्रकाश) हुज़ूर, मैं ग़रीब आदमी हूँ और सब तरह पर बेकुसूर हूँ, मैं तो जानता भी नहीं यह क्या बात है। हाँ अलबत्ता इन बाबुओं का मेरा दिन रात का साथ है ख़ैर अब मेरी इज्जत हुज़ूर के हाथ है, मुझे आपकी खिदमत करने में भी कोई उज्र नहीं है। मेरी जैसी औक़ात है बाहर नहीं हूँ।

दारोग़ा—(मन में) मैं इस बदमाश को खूब जानता हूँ, इसमें

शक नहीं इन बाबुओं को इसी ने खराब किया है, बाबुओं को क्या! इसने न जानिये कितने रईसों को बिगाड़ डाला। इस भूँजी को तो मैं बहुत दिनों से तके था, कई बार मेरे चंगुल में आया पर अपनी चालाकी से बचता चला गया। अच्छा पहिले इसे टटोलें तो इसमें कहाँ तक दम है। मुझे पूरा विश्वास है यह सब शरारत इसी की है। पर तौ भी इससे पता लग जायगा कि इन बाबुओं की कहाँ तक इसमें दस्तन्दाजी है और कौन कौन लोग इसमें शरीक हैं। मैंने उस हैरतअंगेज बुद्धदास की भी फिकिर कर रक्खी है। सेठ हीराचंद की शिराफ़त का ख़याल कर इन बाबुओं पर मुझे भी रहम आता है पर इन बदमाशों को तो हरगिज न छोड़ूँगा। (प्रकाश) कहिये आप क्या कहते हैं, इज्जत तो इस नाज़ुक ज़माने में, मैं हूँ या आप हों, बची रहना खुदा के हाथ में है, इसीलिए अक़िलमंद लोग फूँक-फूँक पाँव रखते हैं। मसल है "साँच को आँच क्या" अगर आप इसमें हैं नहीं तो डर किस बात का। कर नहीं तो डर क्या, अदालत इंसाफ़ के लिये है, वहाँ दूध का दूध पानी का पानी छानबीन अलग-अलग कर दिया जाता है, आप बेफिकिर रहें, क़ुसूर नहीं किया तो तुम्हारा कुछ न होगा।

नंदू—जी हाँ माफ़ कीजिये आपकी बात कटती है, अदा-

लत में इंसाफ़ होता है यह आप नाहक़ कह रहे हैं, उलटे का सीधा सीधे का उलटा वहाँ हमेशा होता है, इंसाफ़ तो ऐसा ही कभी साज़नादिर होता है। दूसरे यह कि अदालत तो रुपया की है, अदालत ही पर क्या रुपये से क्या नहीं होता। ख़ैर हुज़ूर से मैं तक़रीर नहीं किया चाहता, आप जो कहें मैं उसे अंगीकार किये लेता हूँ।

दारोग़ा—(मन में) बुराइयों के करने में इसका जहबा खुला है, अदालत ऐसे ही ऐसों की करतूत से बिगड़ती जाती है, अकसर रुपये के ज़ोर से यह अब तक बचता चला आया इसी से इसके दिमाग़ में यह बात समाई हुई है कि अदालत रुपये की है, ख़ैर तुम बच्चा हमी से ठीक लगोगे (प्रगट) "मुझे यक़ीन कामिल होगया कि तुम ज़रूर इसमें क़ुसूरवार हो, वह कोई दूसरा ख़फ़ीफ़ मामिला रहा होगा जब तुम रुपये के ख़र्च से बच गये। जानते हो यह कैसा टेढ़ा मुक़द्दमा है; जनाब, ये जाल के मुक़द्दमे हैं, इसमें चौदह और दा-मिल की सज़ायें हैं। ऐसे ऐसे गंदे ख़्यालों को दूर रखिये कि अदालत में उलटे का सीधा और सीधे का उलटा होता है, अदालत इंसाफ़ के लिये है, ऐसे लोगों ने जैसे आप हैं अलबत्ता अदालत को बदनाम कर रक्खा है।"

चौदह और डामिल का नाम सुन इसका चेहरा ज़र्द पड़ गया, नस नस ढीली हो गई, जो समझे था कि मैं अपनी चालाकी से बच जाऊँगा और पुलिस को भी अपना तरफ़दार कर लूँगा वह सब उम्मीदें जाती रहीं, गिड़गिड़ा कर बोला—"अच्छा तो अब मेरे निस्तार की क्या सूरत हो सकती है? आप निश्चय जानिये मैं बेक़ुसूर हूँ, बाबू का मेरा दिन रात का साथ है इससे आपको मेरी ओर भी शक है और मैं भी ख़राबी में पड़ता हूँ।"

दारोग़ा—जी हाँ ठीक है, आप बिलकुल बेक़ुसूर हैं। तुम समझते हो मेरे आमाल छिपे हैं। जनाब, आप ही ने बाबू को भी ख़राब किया। आप ऐसे लोगों का ऐसे ऐसे मुक़द्दमों से निस्तार होना मानो आवारगी और बुराई को फ़रोग़ पाने के लिये इशातिथालक देना है। अच्छा, आप तो अब रवाना हों उन दोनों की भी फ़िकिर की जायगी। नक़ीअली! लो तुम इन्हें ले चलो मैं अब बाबू और बुद्धदास के लिये जाता हूँ। ख़ैर बाबू को तो मैं जानता हूँ, बुद्धदास का पता क्योंकर लगाऊँ? बाबू नंदलाल, आप बतला सकते हैं बुद्धदास कहाँ मिल सकेगा। मैं समझता हूँ बुद्धदास

का नम्बर तुमसे बहुत चढ़ा बढ़ा है, बल्कि उसी के भरोसे तुम्हें भी ऐसे ऐसे कामों के लिये हिम्मत होती है।

नंदू—मैं सच कहता हूँ बुद्धदास से मुझे कोई सरोकार नहीं है, सिर्फ़ इतना ही कि वह भी कभी कभी बाबू साहब के यहाँ आया जाया करता है। मुझे तो यह भी खबर नहीं है कि वह कौन सा काम है जिसके लिये आप मुझे और बुद्धदास को इस वारंट में गिरफ़्तार करते हैं।

दारोग़ा—जी हाँ आप कुछ नहीं जानते, आप तो कोई मुनरिख हैं, ख़ैर मुझे इससे क्या ग़र्ज़ है, मुझे तो अदालत के हुक्म का तकमीला करने से ग़र्ज़ है। आप वहीं जाकर अपनी सफ़ाई कर लेना। लो इसके हाथ में हथकड़ियाँ छोड़ इसे लेजाओ, मैं अब उन दोनों के तलाश में जाता हूँ।

अठारहवाँ प्रस्ताव

पानी में पानी मिलै मिलै कीच में कीच।

सबेरे की नमाज़ से फ़ारिग़ हो अफ़ीम के नशे के झोंक में ऊँघते हुए कोतवाल साहब कुरसी पर बैठे सोच

रहे हैं "कोतवाली का भी क्या ही नाजुक काम है। उधर शहर के आवारा और बदमाशों को दाब में रखना और उनके जरिये मतलब भी निकालना, इधर रईसों पर भी चाप चढ़ाये रहना, ऐसा कि जिसमें कोई उभड़ने न पावे। जंट से मैजिस्ट्रेट तक सबको अपनी कारगुजारी से खुश रखना और उनके खयाल में सुर्खरूई हासिल किये रहना कितना मुशकिल काम है। सुबह से शाम तक ऐसे ऐसे पेचीदह झगड़े आ पड़ते हैं कि कुछ कहा नहीं जाता। उस दिन उस जौहरी के दस हजार के जवाहिरात उड़ गये। मुझे मालूम है जिन लोगों का यह काम है, पता भी मैंने लगा लिया है पर जौहरी मरदूद बड़ा कजाक काइयाँ है एक झंझी नहीं गलाना चाहता और बातों ही बात में काम निकाला चाहता है। मैंने सोच रक्खा है आधे पर मामिला तै करेगा तो खैर बेहतर, नहीं बच्चा कुल से हाथ धो बैठेंगे। ५०० रुपये रोज बिना पैदा किये दातुन करना हराम है; अच्छा, फिर हमारा गुजारा भी तो किसी तरह होना चाहिये। बड़े-बड़े नौवाबों का जो खर्च न होगा वह हम अपने जिम्मे बाँधे हैं। १० रुपये रोज की बन्नो को जरूर ही चाहिये; क़िले सी बड़ी भारी इमारत जुदा छेंके हुए हैं जिसमें लक्खों रुपये सोख गये। हमानिवाले दस पाँच

दोस्त दस्तरख़ान के शरीक न हों तो नाम में फ़र्क़ पड़े। चार-चार फ़िटन, कोतल सवारी के घोड़े वग़ैर: का सब ख़र्च कहाँ से आवे, आख़िर अल्लाहृताला को हमारी भी तो फ़िकिर है। रोज़ नया शिकार न भेजे तो इतना बड़ा अटाला कैसे पार हो"—(पीनक से जग) कोई है। अबे ओ! फ़ह्मुआ (थोड़ा ठहर) अबे ओ फ़ह्मुआ (थोड़ा ठहर) अबे ओ फ़ह्मुआ मर गया क्या।

फ़ह्मुआ—हाँ साहब हे आएउँ (आँख मींजता हुआ नींद में भरा आता है)।

कोतवाल—हरामज़ादा अभी तक पड़ा-पड़ा सोता ही था; तू अपनी इस आदत से बाज़ न आयेगा। बीसों मरतबा कह चुके तुझे होश नहीं आता, समझे रह खाल खिंचवा लूँगा।

फ़ह्मुआ—हुजूर माफ करें कसूर भा, अब आगे से ऐसा न करिहौं—(हुक़्क़ा भर सामने लाय रख देता है)।

(कोतवाल हुक़्क़े की निगाली होठों के नीचे दाब पीनक में आय फिर मन में) इसमें कुछ शक नहीं कोतवाली का ओहदा भी एक छोटी सी बादशाहत है मगर हुक्काम ज़िलह अपने चंगुल में हों तब। पहले जो साहब थे उन्हें तो मैंने ख़ूब साँट रक्खा था, शहर के इंतज़ाम का कुल दारमदार साहब ने मुझ पर छोड़ रक्खा था, जो चाहता था सो करता

था। क्या कहें साहब हमारे बड़े खूबी के आदमी थे, लोगों ने बहुतेरा मेरे खिलाफ़ कान भरा पर उन्होंने एक न सुना। जो आफ़त मुझे उनके जमाने में हो गई वह अब काहे को होना है। नया कलट्टर बड़ा सख्त मिजाज मालूम होता है, आदमी यह बेलौस जरूर है, मुझे उम्मीद नहीं होती कि यह किसी तरह मेरे चंगुल में आ सकेगा। बेलौस और बड़ा मुंसिफ मिजाज है; रैयत की भलाई का भी उसे बहुत ख्याल है खैर देखा जायगा। कल से एक नया शिकार हाथ आया है, तीन वारंटगिरफ्तारी, अदालत से, मेरे पास आये हैं; इस वारंट में सेठ हीराचंद के घराने के लोग शामिल हैं। मुक़द्दमा यह ऐसा हाथ आया है कि खूब ही पाकेट गरम होने का मौक़ा मिलेगा, ५ तोड़े भी हाथ न आये तो कुछ न हुआ। इधर कई दिनों से बिलकुल खाली जाता था, अल्लाह ने एक साथ भारी रक़म भेज दी। कल रात बी बन्नो कड़काबिजली और झूमड़ के लिये झगड़ रही थीं, यह रक़म गोया उसी के नसीब से हाथ आवेगी। दारोग़ा सुजानसिंह और नक़ीअली कानस्टेबिल को मैंने इसके लिये तैनात किया है, मालूम नहीं क्या हुआ। (पीनक से जग एक फूँक हुक्के की ले)—अबे फ़हमुआ नाभाकूल कैसी तम्बाकू भर लाया है, कलेजा तक भुलस गया। अहमक़ तुझ

से हज़ार मरतबा कहा गया तू अपनी आदतों से बाज़ न आयेगा। आठ रुपये सेरवाली तम्बाकू जो अभी कल मिट्ठू तम्बाकूवाला नज़र दे गया उसे क्या किया, क्यों नहीं भरा ?

फ़हमुआ—साहब भूल गयेउँ हे भरे लावत हौं।

(नक़ीअली सलाम कर नंदू को सामने हाज़िर कर)

"हुजूर, यह तो मिले हैं बाक़ी दोनों की फ़िक्र में दारोग़ा साहब गये हैं।"

कोतवाल—आहा आप हैं कहिये आप तो बाबू साहब के बड़े दोस्त हैं (मन में) ख़ैर, पहले इसी मूँजी से निपट लें। यह बड़ा बदमाश और चालाक है, अच्छा आज चंगुल में आया (प्रकाश) आप लोग देखने ही के सुफ़ैदपोश हैं पर काम जो आप लोगों से बन पड़ता है वह एक हक़ीर छोटे से छोटा आदमी भी न करेगा। उस जाली दस्तावेज़ में आप का भी दस्तख़त है सच बतलाओ तुमने किस तरह उस पर दस्तख़त किया। आप तो क़ानून से भी वाक़िफ़ हैं, अदालत की बातों को अच्छी तरह समझते हैं, तब मालूम होता है इसमें कुल शरारत आप ही की है।

नंदू—हुजूर, जब वह दस्तावेज़ जाली है तब मेरा दस्तख़त भी जाल से बना लिया गया तो इसमें अचरज क्या है।

कोतवाल—खैर, तुमने भी यक़रार किया कि दस्तावेज जाली है और यही तो मेरा मतलब है (नक़ीअली से) अच्छा इसे ले जाओ, पहरे में रक्खो, उन दोनों को भी आ जाने दो तो जो कुछ कार्रवाई होगी की जायगी।

उन्नीसवाँ प्रस्ताव

"विपदि सहायको बन्धुः"

निशा का अवसान है। आकाश में दो-एक चमकीले तारे अब तक जुगजुगा रहे हैं। अरुणोदय की अरुणाई से पूर्व दिशा मानो टेसू के रंग का वस्त्र पहिने हुए दिननाथ सूर्य की अगवानी के लिये उद्यत सी हो अपनी सौत पश्चिम दिशा को ईर्षा-कलुषित कर रही है। लोग जागने पर रात के सन्नाटे को हटाते हुए अपने-अपने काम में लगने की तैयारी करते सब ओर कोलाहल सा मचाए हुए हैं। कोई सबेरे उठ भगवान् के पवित्र नामोच्चारण में प्रवृत्त हैं; कोई शौच कर्म के लिये हाथ में सोंटा और लोटा लिये बहिर्भूमि को जा रहे हैं; कोई दंतधावन के लिये वृक्ष की डालियाँ तोड़ रहे हैं; कोई अपने छोटे-छोटे बालकों को गुरूजी के यहाँ ले जा रहे हैं; कोई मचलाये हुए लड़कों को फुसला रहे हैं; खेतिहर बैल और हल लिये खेत की ओर जा रहे हैं।

ऐसे समय सुजानसिंह दारोगा तीन कानस्टेबल साथ लिये बाबू की कोठी के द्वार पर यमदूत सा आ बिराजे और यही कोशिश में थे कि ज्यों ही दोनों बाबुओं में से कोई भी बाहर निकलें कि उन्हें वारेंट दिखा गिरफ्तार कर लें।

बाबुओं की हवेली के पिछवाड़े खिड़की सा एक छोटा दरवाजा जनाने मकान का था। हीराचंद के समय तो बीसों दास-दासी भोर ही से अपने-अपने टहल के काम में लग जाते थे पर वह तो अब क़िस्सा किहानी की बात हो गई। पर अब भी मखनिया नाम की पुरानी चाकरानी जो हीराचंद की स्त्री के बहुत मुँह लगी थी पुराना घर समझ अब तक टहल के काम में लगी ही रही। यह मखनिया हीराचंद का समय देख चुकी थी। बाबुओं के जघन्य आचरण पर मन ही मन कुढ़ती थी। कोठी के दरवाजे पर पुलिस को बैठे देख खिड़की को धीरे से खटखटाया। सेठानी निकल आईं और किवाड़ा खोल उसे भीतर ले गईं। उसे भौचकी सी देख कारण पूछा तो यह कहने लगी—"बहूजी, आज काहे दुआर पर पुलिस के चपरासी बैठे हैं ?" यह सुनते ही सेठानी के हाथ-पाँव फूल गये घबड़ा उठी "हाय! सब तो गया ही था अब क्या सेठ के नाम में भी कलङ्क लगा चाहता है ? हाय! कपूत किसी के न जन्में!—अच्छा, तो जा चंदू को बुला ला, तब तक मैं

जा उन दोनों बाबुओं को जगाती हूँ, और सावधान किये देती हूँ।"

सेठानी—(मन में) हाय ! मुझ निगोड़ी को मौत न आई। सेठ के स्वर्गवास होते ही सोने का घर छार में मिल गया। सच है "पूत सपूते तो धन क्या, पूत कपूते तो धन क्या" सेठ के समय का राजसी ठाठ तो न जानिये कहाँ बिलाय गया। किसी तरह अपनी बात बनी रहे और जिंदगी के दिन कटें इसी को मैं अपना सौभाग्य मानती थी सो उसमें भी बट्टा लगा। हाय! तिमहले पर दोनों बाबू सो रहे हैं; इतनी सीढ़ियाँ मुझसे चढ़ी न जायँगी और यहाँ से पुकारना ठीक नहीं तो अब क्या करूँ ? अच्छा चंदू को आने दो।

चंदू भी अचंभे में आया कि आज इतने सबेरे सेठानी ने क्यों बुलाया। बाहर पुलिस का पहरा देख उसी खिड़की से भीतर गया।

चंदू—बहूजी क्या आज्ञा होती है ?

सेठानी—(रो रो कर) चंदू, मैं तुम्हारे ऋण से उऋण नहीं हूँ, एक तुम्हीं तो सहारा हो नहीं तो चारो ओर से ऐसी भयङ्कर बयार बह रही है कि कहीं पता न लगता (कान में कुछ कह)।

चंदू—अच्छा, तो तुम इतनी फिकिर रक्खो कि बाबू बाहर न निकलने पावें, मैं सब ठीक कर लूँगा।

बीसवाँ प्रस्ताव

बन्धनानि किल सन्ति बहूनि
प्रेमरज्जुकृत बन्धनमन्यत् ।
दारुभेदनिपुणोऽपिषडङ्घ्रि-
र्निष्क्रियो भवति पङ्कजबद्धः ॥

पाठक ! आज अब यहाँ हम प्रेमपुष्पावली के दो भ्रमरों का कथानक आपको सुनाना चाहते हैं । कुछ लिखने के पहिले आपको सावधान किये देते हैं कि हमारे ये दोनों भ्रमर निःस्वार्थ प्रेमी हैं । इन्हें आप उस कोटि के प्रेमी न समझना जैसा इन दिनों बहुतेरे अपना मतलब साधने के लिये परस्पर प्रेमी बन जाते हैं । जरा भी अपने स्वार्थ में चूक हो जाने पर मैत्री क्या बल्कि साँप और नेवले का सा हाल उन दोनों का हो जाता है । हमारे पाठक पंचानन से परिचित होंगे, जिनकी भेंट हम अपने पढ़नेवालों को पहिले करा चुके हैं । इस प्रेम के दूसरे भ्रमर का बार-बार नामसङ्कीर्तन अनुपयुक्त है । बस समझ रक्खो इस सौ अजान में यही एक सुजान है, जिसे हम प्रेम की फुलवारी का दूसरा भ्रमर कह परिचय देते हैं । पञ्चानन ठठोल तो था ही पर इसका ठठोलपन सबके साथ एक सा नहीं रहता था । किसी तरह के तरद्दुद, फिकिर और चिंता से इसे चिढ़ थी । किंतु जब अपने किसी एकांत

प्रेमी को तरद्दुद में पड़ा देखता था तो जहाँ तक बन पड़ता था आप भी उसे तरद्दुद से बाहर करने को भिड़ी तो जाता था। इस समय चंदू को कुछ न सूझा और कोई बात मन में न आई कि कैसे सेठ के घराने को दुर्गति से बचावें केवल इतना ही कि पंचानन से मिल इससे इसकी कुछ सलाह करें; इसलिये कि पंचानन अदालती कार्रवाइयों को भरपूर समझता है; वह कोई ऐसी बात निकालेगा कि जिससे भरपूर निस्तार हो जाय। यद्यपि इन दोनों की गाढ़ी मैत्री तो थी पर पंचानन अपनी ठठोल आदत से बाज न आ चंदू को 'चकोर' कहता था और चंदू भी इसे 'चारु चंचरीक' कहा करते थे। आज अपने यहाँ भोर ही को चंदू को आये देख पंचानन बोले "आज चकोर को दिन में चकाचौंधी कैसी? क़ुसूर माफ़ 'अद्य प्रातरेवानिष्टदर्शनम्।"

चंदू—सच है अनिष्टदर्शन भी इष्टदर्शन न हुआ तो चारु चंचरीक के चिरकाल का प्रेम कैसा?

पंचानन—आप तो जानते ही हैं कि कुशल प्रश्न के पूछने में कैसी पेचिश उठा करती है, इससे मैंने यही बेहतर समझा कि इस आदत से बाज रहूँ, और फिर वह प्रेम ही क्या जब इस प्रेम के बाग के माली को प्रेमपुष्प की सुगंधित कली हृदय के आलबाल में खिल परस्पर एक दूसरे को प्रमुदित न कर सकी।

चंदू—सच है, यदि उस आलबाल के चारों ओर कटीले पौधे न उग आये हों, इसलिये जब तक उन कटीले पौधों को उखाड़ न डालेगा, तब तक उस माली की सराहना ही क्या ?

पंचानन—खैर, आप भी इस दुनयवी पेच में आ फँसे "बाद मुद्दत के फँसा है यह पुराना चंडूल" (हँसता है)।

चंदू—मित्र, अब इस समय ठठोलबाजी रहने दो, कोई ऐसी बात सोचो जिसमें सेठ के घराने की पत रह जाय। हम लोग निरे पोथी बाँचनेवाले अदालत की कार्रवाइयाँ और क़ानून के पेचों को क्या समझें। तुम अलबत्ता इसमें परिपक्वबुद्धि हो। कोई ऐसी बात सोच के निकालो कि इन दोनों बाबुओं का निस्तार हो, नंदू और बुद्धदास को अपने किये का फल मिले।

पंचानन—जी हाँ, बाबुओं ने तो समझा था कि बढ़ के हाथ मारा है। रक़म इतनी हाथ लगती है कि कुछ दिन के लिये चैन है। अच्छा तो मैं अब इस बात की खोज करूँगा कि वह जाली दस्तावेज किस ढंग पर लिखा गया है और बाबुओं की साजिश उसमें कहाँ तक है। तो अब इस जून तो आप पधारें, हम इसकी फिकिर करेंगे पर पुलिस के कुत्तों का मुँह मार पिंड छुटवाना वाजिब है।

अस्तु चंदू ने उन दोनों के बचाने को क्या किया सो आगे खुलेगा। पंचानन को जी से लग गई कि अपने मित्र चंदू की

इच्छा पूरी करें। अब यह सोचने लगा कि क्या उपाय होना चाहिये कि चंदू का मनोरथ भी सिद्ध हो और उन दोनों बदमाशों को उनके किये का फल मिले। पंचानन चालाकी और क़ानूनी बारीकियों के समझने में किसी से कम न था, बल्कि उस प्रांत के नामी वकील पेचीदह मुक़द्मों में बहुधा इसकी राय लिया करते थे। कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ है कि जिस मुक़द्मे में इसने जैसी राय दी वह हाईकोर्ट तक बहाल रही बड़े बड़े जालियों को यह बात की बात में ऐसा पकड़ लेता था कि उनकी एक भी नहीं चलती थी। पर इन सब गुणों के रहते भी इसे जो सच्चा, न्याय और इन्साफ होता था वही पसन्द आता था। "साँच को आँच क्या" यह पालिसी हमेशा इसे रुचा की। इसलिये इसको यही पसन्द आया कि हीराचन्द के दोनों वंशधर खुद अदालत में जाय हाजिर हों और जो सच हो सो कह दें। इससे वे दोनों तो जरूर ही फँस जायँगे, और बाबुओं के बचाव की कोई सूरत निकल आवेगी। अब रह गया इनका यक़रार कर लेना, इस पर बहस और तक़रीर की बहुत कुछ गुंजाइश रहेगी। सच पूछो तो यह बड़े बड़े बैरिस्टर और वकील जो हजारों एक दिन की बहस का मुवक्किल से पुजाय बेचारे को उलटे छूरा मूड़ भरपूर अपना मतलब गाँठते हैं, सो इसी

तक़रीर और बहस की बदौलत । वाह धन्य ! विधाता ! यह जो प्रचलित है कि "बात की करामात" सो क्या ही सटीक है । बात में बात पैदा कर देना अङ्गरेजी ही क़ानून हमें सिखाता है । पर तोफ़गी तो यह, जैसा मसल है "चोर से कहो चोरी करे, शाह से कहो जागता रहे" इसी का नाम है । हमें क्या हमें तो दिलबहलाव चाहिये, हम मुक़द्दमों की पेचदगी ही में अपना दिलबहलाव निकाल लेते हैं । पर सच पूछो तो (Litigation) क़ानून की बारीकियाँ ही बेईमानी और फ़रेब लोगों को सिखा रही हैं । इसी से मुझे यही इसमें बचाव की सूरत मालूम होती है कि बाबू जो कुछ सच्चा हाल हो अदालत में जा एक़रार कर दें । क़ानून की मंशा है कि जुर्म करनेवाला क़सूरवार नहीं है, बल्कि वह जो उस जुर्म का उसकानेवाला होता है । ऐसा होने से मुक़द्दमे में बहस की कई सूरतें पैदा हो जायँगी । कदाचित् बड़े सेठ के रईस घराने पर रहम कर हाकिम बाबुओं की रिहाई कर दे ।

इकीसवाँ प्रस्ताव

खल उघरें सत्काल ।

मसल है "सबेरे का भूला साँझ को आवे तो उसे भूला न कहना चाहिये ।"

दूसरे दिन चंदू बाबुओं के पास गया और पाला की मारी मुरझानी कली सी उनके मुख की छवि पाय, चंदू के मन में सेठजी के साथ इसका पुराना सच्चा स्नेह उभड़ आया। बाबू भी इसे देख आँसुओं की धारा बहाने लगे। जिससे मालूम होता था कि अब यह दोनों राह पर आने का पूरा इरादा कर चुके हैं, और जो चूक इनसे बन पड़ी है उसके लिये भरपूर पछता रहे हैं। चंदू भी अब इन्हें इस समय अधिक लज्जित करना उचित न समझ, ढाढ़स बँधाते हुए बोला "साँझ का भूला सबेरे आवे तो उसे भूला नहीं कहते, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा; तुम बड़े बाप के लड़के हो, कभी संभव नहीं था कि सेठ हीराचंद ऐसे धर्मात्मा और पुण्यशील के वंशधरों का ऐसा हाल हो। तुम दु:संग में पड़ यहाँ तक अपने को भूल कर अजान बन गये कि अंत को इस दशा को पहुँचे; अब शोक मत करो, मैं फिकिर कर चुका हूँ। ईश्वर ने चाहा और सेठ का सुकृत है तो तुम्हारा बाल न बाँकेगा और अदालत से तुम्हारी रिहाई हो जायगी, किंतु जिनके जाल में तुम अब तक फँसे थे और जिन्होंने चाहा था कि इन नई चिड़ियों को फँसाय कबाब सा भूँज निगल बैठें, वे ही अपने पातकअग्नि में भुँज कर कबाब हो जायेंगे। तो अब आगे से प्रण करो कि अब अजान न बनें।"

दोनों की इस तरह पर बातचीत हो रही थी कि सड़क से चिल्लाते हुए किसी की आवाज सुन पड़ी "हाय! मैंने ऐसा नहीं समझा था कि नंदू के कारण मेरी यह दशा होगी। उस बदमाश नंदू ने अपने भरसक बाबुओं को बेवकूफ बनाकर फँसाने की कोई बात छोड़ नहीं रक्खी थी। मै यह जरूर कहूँगा कि बाबू ऐसे रईस' खान्दानी की यह कभी इच्छा न रही होगी कि वे धोखे के लिए नियत बिगाड़ें। यह नंदू इस बुराई का जैसा बानीमुबानी रहा वैसा ही यह सब मुसीबत भी उसी पर आ टूटी। मैं बेकुसूर हूँ।" पुलीस के सिपाही—"चुप रह बे, मेत मेत की टॉय टॉय कर रहा है। उस वक्त इन सब बातों का खयाल क्यों न किया, जब जाल रचने बैठा था। अच्छा, बहुत दिनों के बाद हम लोगों के चंगुल में आये हो।"

चंदू इन सब बातों को सुन मन ही मन प्रसन्न होने लगा और सोचने लगा कि इसका इस जून का यह चिल्लाना मेरे लिये बहुत फायदे का हुआ। अब मैं जाऊँ और इसकी खबर पंचानन को दूँ।

चंदू—(प्रकाश) बाबू, तुम बेखटके रहो ईश्वर ने चाहा तो तुम्हारी रिहाई हो जायगी।

बाईसवाँ प्रस्ताव

सत्यमेव जयति नानृतम्।

अंत को यह मुक़दमा लखनऊ के चीफ़कोर्ट में पेश किया गया। पंचानन को—इसमें चंदू ने गवाह नियत किया। पंचानन को जो सदा चैन में रहना ही अपने जीवन का उद्देश्य माने हुए था, लखनऊ जाना नागवार हुआ किंतु चंदू के उद्देश्य से उसे ऐसा करना ही पड़ा। दूसरे यह कि चंदू ने बाबू का कचहरी में जाना अनुचित और सेठ हीराचंद को हलक समझ इसे बाबुओं की ओर से मुख़तार मुक़र्रर किया था।

मुक़दमा शुरू होने पर नंदू बुलाया गया। यह काँपता-काँपता दो पुलीस के पहरे में जज के सामने हाज़िर हुआ। जज ने पूछा "तुम अपनी सफ़ाई इस मुक़दमे में क्या देते हो?"

नंदू—हुज़ूर, यह सब पुलीस की कार्रवाई है। मेरा इस में कोई क़ुसूर नहीं और हो भी तो यह हरकत मैंने बाबू के कहने से की।

पंचानन—नंदू बाबू, तो क्या आप इसमें बिलकुल बे-क़ुसूर हैं? उस दिन वारंट आपके नाम आया था कि बाबू के नाम? आप चालाकी से न चूकियेगा। सच है अंधड़ में जब कोई बड़ा पेड़ उखड़ने लगता है तो अपने साथ दो एक

छोटे-मोटे वृक्षों को भी ले डालता है, और आपने तो ऐसे-ऐसे कई एक बाबुओं को हलाल कर डाला। पहले आपने कहा "हम बिलकुल बेक़सूर हैं" पीछे से कहते हो "किया भी तो बाबुओं के कहने से"—इससे साफ़ जाहिर है कि आप अपने साथ बाबुओं को भी फँसाना चाहते हैं।

जज—(पुलीस से) तुम दोनों इसके बारे में क्या जानते हो?

पहिला पुलीस—हुजूर, इसने जाल किया है और हमेशा से यही काम करता रहा है, इसके साथ एक आदमी बनाम बुद्धू और भी है; वह भी इसी अदालत में हाज़िर है। ये दोनों आपस में मिले हुए हैं और यही पेशा इन लोगों का है कि नई उगरवाले रईस के लड़कों को फँसाया करें।

पंचानन—हुजूर, यह बिलकुल सही है आज दिन अवध भर में हीराचंद जैसे रईस हैं सब लोग जानते हैं, तब उनके लड़कों को क्या पड़ी जो इतनी थोड़ी सी रक़म के लिये ऐसी बेइज्ज़ती का काम कर गुज़रेंगे। अदालत को जो कुछ दरियाफ़्त करना हो मैं उनकी तरफ़ से मुख़्तार हाज़िर हूँ, पर इतना ज़रूर कहूँगा कि इन दोनों का हमेशा से यही ढंग चला आया है। ये लोग रेवड़ी के लिये मसजिद ढहानेवाले हैं। क्यों नंदू बाबू, सच है न?

(नंदू सिर नीचा कर लेता है) हुजूर, अब अदालत को कोई शक इसके क़ुसूरवार होने में न रहा, और फिर इन दोनों का तो सदा से यही माक़ला रहा है कि अँगरेजी राज्य में अदालत और क़ानूनों की पेचीदगी इसीलिये है कि जाल रचे जायँ।

जज—अगर तुम्हारा कहना सही है तो तौहीने अदालत एक दूसरा क़ुसूर इस पर लगाया जा सकता है। अच्छा, तो इस सबके लिये इसको सात वर्ष की सख्त सजा का हुक्म दिया जाता है और अदालत मातहत की तजवीज देखने से मालूम हुआ है कि कातिब इस जाल का मुद्दयास है। इसलिये उसको दश वर्ष की क़ैद का हुक्म होता है।

तेईसवाँ प्रस्ताव

राजा करे सो न्याव, पासा पड़े सो दाँव

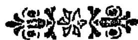
नंदू का बुरा परिणाम देख इन बाबुओं को कुछ ऐसा भय सा समा गया कि उसी दिन से इन्हें चेत हो आई। जैसा किसी को दीवानापन सवार हो गया हो लगातार किसी अकसीर दवा के सेवन से जब दीवानापन उतर जाय, अथवा सोने से जैसा कोई जाग पड़ा हो, या कोई मादक

द्रव्य भाँग अफ़ीम शराब इत्यादि पीकर मतवाला हो बकता फिरे मद उतर जाने पर, अथवा भूत सवार हो झार फूँक के उपरांत उतर जाने से होश आने पर अपने किये को पछताता हुआ मुँह छिपाता फिरे, वही हाल इस समय दोनों बाबुओं का था। अब जो इन्हें चेत आई तो एकांत में बैठे ये घंटों तक आँसू बहाया करते और पछताते। सबसे अधिक पछतावा इन्हें बड़े सेठ साहब की बनी हुई बात के बिगड़ जाने और असंख्य धन के निकल जाने का था। "हाय ! इस बदमाश नंदू ने मुझे अपने जाल में फँसाय मेरी कौन २ सी दुर्गति करा डाली।" अब इनको यह खयाल आया कि जिस बात में अब भी किसी तरह जरा भी उस बदमाश का लगाव रह जायगा उसमें कुशल नहीं। "यत्रास्ते विषसंसर्गोऽमृतं तदपि मृत्यवे।" अपने चचा बुड्ढे मानिकचंद का नंदू को बाबू ने मुखतार आम कर दिया था उस मुखतारनामे को अदालत से मंसूख करा दिया और नंदू की सलाह मान मानिकचंद का माल मताल अपने क़ब्ज़े में लाने की जो अभिसंधि की थी उससे भी अपने को अलग कर जो कुछ काग़ज़ उस बूढ़े सेठ का नंदू ने संदूक़ से उड़ा लाया था और जो कुछ जायदाद थी सब भिद्दू को बुलाय सिपुर्द कर भंदू को उसका मुखतार कर दिया और ये दोनों बाबू बड़े सेठ हीराचंद के चलाये पथ पर

चलने लगे। परिणाम में कुछ दिन उपरांत हीराचंद के घराने की प्रतिष्ठा फिर वैसी ही हो गई। पाठक, देखिये सौ अजान में एक सुजान कैसा गुनकारी हुआ कि सब अजानों को फिर राह पर अंत को लाया ही, नहीं तो कौन आशा थी कि ये दोनों सेठ के लड़के कभी सुढंग पर आ सुधरेंगे। दूसरे यह कि जो सुकृती हैं उनके सुकृत का फल अवश्यमेव औलाद पर आता है। हीराचंद से सुकृती की औलाद दूषित-चरित की हो यह अचरज था। अंत को हम अपने पढ़नेवालों को सूचित करते हैं कि आप लोगों में यदि कोई अबोध और अजान हों तो हमारे इस उपन्यास को पढ़ आशा करते हैं सुजान बनें; इस क़िस्से के अजानों को सुजान करने को चंदू था और आप लोगों को हमारा यह उपन्यास होगा।

॥ इति ॥

टिप्पणी सहित कठिन-शब्दार्थ-सूची



सांकेतिक शब्द—(सं० से संस्कृत। अलं० से अलंकार। अ० से अरबी। फ़ा० से फ़ारसी। अँग० से अँगरेज़ी)

खोटा—(सं० क्षुद्र) दुष्ट।

तातो—(सं० तप्त) जलता हुआ, गरम।

दुर्व्यसनी—बुरा शौक करनेवाला; फ़िज़ूल-ख़र्च; अपव्ययी।

"दुर्व्यसनी......लगे हैं"—यहाँ पर उपमा अलंकार है।

"मानो प्रकृति देवी...चाहती है"—इसमें उत्प्रेक्षा अलंकार है।

प्रेयसी—प्यारी, प्रियतमा।

"मानो हँस सा रहे हैं"—उत्प्रेक्षा अलं०।

"जिसकी सम विषम...व्याप रही है"—उपमा अलं०।

सम विषम भूभाग—ऊबड़ खाबड़ धरती।

वितान—चँदवा।

"मानो वितान रूप......दिया गया है।"—उत्प्रेक्षा अलं०।

"मालूम होता है......होड़ लगाये हुए हैं"—उत्प्रेक्षा अलं०।

होड़—स्पर्धा।

"मोती से चमकते......उपहार बन रहे हैं"—समासोक्ति अलं०।

निशानाथ—(निशा = रात, नाथ = स्वामी); चंद्रमा।

निशानवधूटी—रात्रि रूपी नव (नई) वधू (बहू)।

"चाँदनी...धरती"—अपह्नुति अलं०।

"यहाँ कन्या......प्रस्तुत है"—समासोक्ति अलं०।

मनसिज—(मनसि = मन में, ज = पैदा होना) मन से जो पैदा

छलछपटी—(सं० छलम्पटता)—आवारगी।

छिछोरपन—क्षुद्रता; नीचता।

आय—(पुरानी हिन्दी के "आसना" "आहना" (होना) क्रिया का पूर्वकालिक रूप; शुद्ध शब्द "आहि" है। प्रायः भट्टजी ने पुरानी हिन्दी के अनुसार धातुओं का पूर्वकालिक रूप ऐसा ही लिखा है। अन्य स्थानों में भी जैसे "पकड़ाय" "बुलाय" इसी तरह से समझना चाहिये) आकर।

सोवत हैं—सोते हैं (प्रयाग के आसपास की यह भाषा है)।

दूसरा प्रस्ताव

जलप्राय—जलमय, वह प्रदेश या स्थान जहाँ जल अधिकता से हो।

हरित-तृण-आच्छादित—हरी हरी घास से ढकी हुई।

मरकतमई सी—मानो पन्ने (एक प्रकार का हरा मणि) से जड़ी।

बाँकुरे—बंक, बाका (यह शब्द प्रायः बीर शब्द के साथ आता है; जैसे "बीर बाँकुरे")।

पुण्यतोया—पवित्र जलवाली।

सरिद्वरा—नदियों में श्रेष्ठ।

विघ्नैः···परित्यजन्ति—बार बार विघ्न पड़ने पर भी जो कार्य को प्रारम्भ करके उसे बीच ही में नहीं छोड़ देते वे श्रेष्ठ पुरुष हैं।

अनुशीलन—अभ्यास, अध्ययन।

बहुश्रुत—(बहु = बहुत; श्रुत = सुना हुआ या शास्त्र) जिसने बहुत सुना हो अर्थात् विद्वान्, पण्डित।

ग्रंथचुम्बक—(ग्रंथ = पुस्तक; चुम्बक = चूमनेवाला) जो किसी विषय का पूर्ण विद्वान् न हो, वरन ग्रंथों का केवल पाठमात्र कर गया हो उसके विषय को समझा न हो। अल्पज्ञ।

साक्षरमात्र—जो थोड़ा भी पढ़ा लिखा हो।

वृत्ति—दान।

बेबूझे—बिना सोचे समझे।

बेजा—अनुचित ।
ख़नखा—(फ़ा-जनकः) हिजड़ा; नपुंसक ।
सुमिरनी—जपने को २७दानों की माला ।
नितान्त—अत्यन्त ।
स्फूर्ति—प्रकाश, प्रतिभा ।
नवनता—नम्रता ।

तीसरा प्रस्ताव

"गुणैः···निर्धीयते"—गुणों की सब जगह क़दर होती है ।
विद्वन्मण्डली-मण्डनशिरोमणि—विद्वानों के समूह में सर्वश्रेष्ठ ।
दुरूह—कठिन ।
अनुपपन्न—असमर्थ ।
गुज़रान—(फ़ा-शब्द) व्यतीत; जीविका-निर्वाहार्थ ।
श्रुताध्ययनसम्पन्न—विद्वान् ।
सद्वृत्त—अच्छा चरित्रवाला, सदाचारी ।
लिलार—(सं० ललाट) मस्तक, माथा ।
दामिनि—(सं० दामिनी) बिजुली ।
आर्ष—ऋषियों का बनाया हुआ ।
सन्था—पाठ ।
भासती थी—मालूम होता था ।
मनमानस—मनरूपी मानसरोवर, रूपक अलं० ।
कायिक—शरीरसम्बन्धी ।
मानसिक—मनसम्बन्धी ।
मोतक़िद—क़ायल ।
"शान्ति और क्षमा···कुसुमाकर"—इसमें रूपक अलंकारों की लड़ी की लड़ी है ।
तृष्णालता गहन वन—लोभरूपी लताओं का घना जंगल ।
अज्ञानतिमिर—मूर्खतारूपी अन्धकार ।
सहस्रांशु—(सहस्र = हज़ार; अंशु = किरण) हज़ार किरणवाला; सूर्य ।
दुराग्रह—किसी बात पर मूर्खता के साथ हठ करना ।
क्रूरग्रह—पापग्रह (सितारे); शनिश्चर, राहु, केतु आदि ।
अस्ताचल—(अस्त = डूबना; छिपना । अचल = जो न चले; पर्वत या पहाड़) पुराने सिद्धान्त के अनुसार जहाँ सूर्य, चन्द्रमा

आदि ग्रह अस्त (छिप) हो जाते है।

उदयगिरि—वह पर्वत जहां से सूर्य आदि ग्रह उदय होते है।

उपशम—शान्ति।

सौजन्य-सुमन—साधुतारूपी फूल।

कुसुमाकर—वसंत; वाटिका।

रीझ गये—प्रसन्न होगये।

पट्टशिष्य—मुख्य शिष्य।

अनुहार—समानता।

वाक्पाटव—बोलने में चतुराई।

चौथा प्रस्ताव

"यौवनं...चतुष्टयम्"—जवानी, धन दौलत, प्रभुताई और अज्ञानता इनमें से एक एक अनर्थ के करनेवाले होते हैं फिर जहां ये चारों इकट्ठे हो जायं उसका क्या कहना।

बेहृतिहा—असंख्य।

आकृति—शकल, सूरत।

"मानो......महीने हैं"—यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकारों की एक लड़ी है जिसमें रूपक अलंकार भी गौण रूप से विद्यमान है।

सुकृतसागर—पुण्य का समुद्र।

बीजाङ्कुर न्याय—बीज और अंकुर में जो परस्पर में संबंध है उसी को देखकर इस न्याय की उत्पत्ति हुई है अर्थात् बीज अंकुर का कारण है उसी तरह से अंकुर भी बीज का कारण है। यह न्याय ऐसे स्थान पर व्यवहार होता है जहां दो चीजों के बीच में कार्य और कारण का संबंध होता है।

अंक—चिह्न; चंद्रमा में कलंक।

सामुद्रिकशास्त्र—ज्योतिषशास्त्र का एक अंग जिससे हस्तरेखा आदि का विचार किया जाता है।

समायसके—समा सके (इस तरह का रूप भी भट्टजी की हिंदी की खास विशेषता है। इसी तरह से "जाय सके", "खाय सके" इत्यादि)।

लल्लोपत्तो—चापलूसी, खुशामद।

खुचुर—(सं० कुचर) व्यर्थ का दोष निकालना।

खुसूगिमत निरोगता।

सार खाते है—डाह करते है।

अल्हड़पन—अनाड़ीपन, बेपरवाही।

दर्पदाह ज्वर—अभिमान रूपी जलन पैदा करनेवाला ज्वर।

दाह—जलन।

सदुपदेश शीतलोपचार—अच्छे अच्छे उपदेशरूपी ठंढक पहुंचानेवाले सामान।

कारगर—(फ़ारसी शब्द) उपयोगी, लाभकारक, असर करनेवाली।

मीर शिकार—(अमीर शिकार) अमीरों का शिकार करनेवाला। जो एक अमीर के लड़के को बिगाड़ चुकने पर दूसरे, फिर तीसरे इसी तरह अमीरों के लड़कों को बिगाड़ कर उनके धन द्वारा जो आप मजा लूटता है।

खूसट—(सं० कौशिक) उल्लू, मनहूस।

कलावन्तों—(सं० कलावंत) किसी फ़न या हुनर में उस्ताद।

दोग़ले—(अरबी शब्द) वर्णसंकर।

पाँचवाँ प्रस्ताव

चहलें—(सं० किचिल्ल) कीचड़।

नैबे—(सं० नै = नई। बे (वय) = उमर) नई उमर, जवानी।

दारुण—कठोर।

सुखद—सुख देनेवाला।

ऊष्मा—गर्मी।

कुसुमबान—जिसका बाण कुसुम (फूल) का हो; जिसे पुष्पधन्वा भी कहते हैं, कामदेव।

सलोनापन—लावण्य, लोनाई।

उमङ्ग—इच्छा, जोश, उल्लास।

अनिर्वचनीय—अकथनीय, जिसका बयान न हो सके।

दाख—(फा० शब्द) अंगूर।

वयस्संधि—लड़कपन और जवानी की उमर के मिलने का समय, नव यौवन।

तरेर—घुमाकर।

अपिच—बल्कि।

तरल-तरङ्गिणी-तुल्य—चंचल नदी के समान।

तारुण्य कुराकी—जवानी रूपी दुष्ट बछवानी।

चोखा (चोख)—शुद्ध और उत्तम।

अज़हद—बहुत अधिक।
निज़री—निगाह, दृष्टि।
बरहम—क्रोधित।
रब्तज़ब्त—मेलजोल।
तक़रीब—(अ० शब्द) उत्सव, जलसा।
शीशे आलात—(फ़ा० शब्द) शीशे के यंत्र झाड़,फ़ानूस आदि।

छठा प्रस्ताव

किमकार्यं कदर्याणाम्—दुष्ट तथा नीच के लिए कोई ऐसा बुरा काम नहीं है जिसे वे न कर सकें।
सन्नाटा—नीरव, शब्दाभाव।
तिग्मांशु—(तिग्म = तेज। अंशु = किरण) सूर्य।
तीखी—(सं० तीक्ष्ण) तेज।
खरतर—तेज।
ब्रह्माण्ड—जगत्, संसार।
तप्ता—तप्त।
लोहपिण्ड—लोहे का गोला।
अनुहार—समानता।
स्थावर—अचल, स्थिर, जो चलै नहीं जैसे पेड़ इत्यादि।
जंगम—चलनेवाला, चरिष्णु, जैसे मनुष्य, पशु इत्यादि।
यावत्—जितने।
त्वगिन्द्रिय—स्पर्शेंद्रिय, जिस इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान हो।
शीतस्पर्शवत्यापः—कणाद मुनि ने पाचों तत्त्वो में से जल तत्त्व की परिभाषा में लिखा है कि जल वह तत्त्व है कि जो छूने में शीतल हो।
दण्डायमान—लम्बा।
ललाटन्तप—ललाट (खोपड़ी) को तपानेवाला, अत्यंत गरम, चैलाफाड़ घाम।
चण्डांशु—(चण्ड = तेज, गरम। अंश = किरण) सूर्य।
उच्चाटन—तंत्र के छै अभिचारी या प्रयोगों में से एक; नाश।
नवोढ़ा—नवविवाहिता, नववधू, नई दुलहिन।
रूपगर्विता—अपने सुंदरपे के घमंड में भरी हुई।
जंगरैतिन—परिश्रम करनेवाली, मेहनतिन।
विक्षेप—खलल।
कर्कशा—लड़ाकिन, कटुभाषिणी।

प्रेमालाप—प्रेम की बातचीत ।

सहिष्णुता—सहन करने की शक्ति ।

सौहार्द—प्रेम ।

अठखेली—(सं० अष्टक्रीड़ा) मस्ताना या मतवाला चाल ।

अकालजलदोदय—असमय में मेघों का आकाश में उदय होना ।

कदर्य—नीच, तुच्छ हृदय ।

घिष्टपिष्ट—गहिरा मेलजोल, गहिरी मित्रता ।

" एकेनापि···कुलम् "—किसी एक खोखर में रक्खी हुई आग से जैसे कुल वन जल जाता है वैसे कुल में एक कुपुत्र के उपजने पर समस्त वंश का वंश नष्ट हो जाता है ।

कोंढ़े—(सं० करीर) नया पौधा या अंकुर, नवयुवक ।

गुलछर्रे—आनन्द, भोगविलास ।

निर्गन्धोज्झित पुष्प—वह फूल जो सुगन्ध न रहने से फेंक दिया गया हो ।

ठौर—(सं० स्थान) जगह ।

कुलप्रसूत—उत्तम वंश में पैदा हुआ ।

नटखट—धूर्त्त, कपटी ।

तमाशबीनी—(अ० तमाशा फ़ा० बीन = देखना) ऐयाशी ।

वारविलासिनी और वार वनिता—(सं० वार = समूह, सर्व-साधारण; विलासिन या वनिता = स्त्री) समूह भर की स्त्री; वेश्या ।

वलीअहद—स्थानापन्न, वारिस ।

उद्घाटन—प्रकट करना, खोल देना ।

सातवाँ प्रस्ताव

सन्ततिः···पुण्य कर्मभिः—बाप दादों के पुण्य कर्म से संतान की उन्नति और प्रशंसा होती है ।

ईशान कोण—पूर्व और उत्तर के बीच की दिशा ।

देवखात—किसी मन्दिर के पास का कुंड ।

हलका—घेरा ।

लहलहे—विकसित, हरेभरे ।

विटप—वृक्ष ।

आतप—घाम ।

त्रिवारस—पूजा ।

परिशिष्ट—बचा हुआ ।

तीर्थलियों—(सं० तीर्थस्थली) तीर्थ के पुजारी और पंडे।

फूटीभंकी—फूटी कौड़ी, (यहां के दलालों की बोली)

चिरवत्ती—चिथड़ा चिथड़ा।

बहियरबानी—कुलीन स्त्री।

अभिसंधि—षड्यन्त्र, चुपचाप कई आदमियों के मिलकर एक कोई खास काम करने की सलाह।

आठवाँ प्रस्ताव

धृष्टता—ढिठाई, निर्लज्जता।

अशालीनता—निर्लज्जता; ढिठाई।

निरंकुश—स्वतंत्र, स्वेच्छाचारी।

हृद्गतभाव—वह भाव जो हृदय के भीतर हो।

हरकसे बाशद—चाहे कोई हो।

आज़ुर्दा—(फ़ा० अज़ुर्दा) खिन्न, दुखी।

बेनज़ीर—अनुपम, बेजोड़; लासानी।

जहूरा—(अ० ज़हूर) ठाठ, दृश्य, दिखाव।

मनहूस क़दम—चौपटचरण जिनका आना अशुभदायक हो।

कुंदेनातराश—जाहिल, मूर्ख।

ब्राह्मीबेला—सूर्योदय के पहिले की चार घड़ी।

मङ्गला आरती—वैष्णव संप्रदाय में प्रातःकाल की पहिली आरती।

पौफट—(सं० प्रस्फुट) सूर्य का उदय।

"पौफट......छागई"—रूपक अलं०।

"बनेबने के......गायब होने लगे"—उत्प्रेक्षा अलं०।

कालकैवर्त—कालरूपी मल्लाह।

"कालकैवर्त...समेट लिया"—रूपक अलं०।

"सूर्य लका कबूतर......चुग गया"—उपमा अलं०।

रक्तोत्पल सदृश—लाल कमल के समान।

वासरश्री—दिन की शोभा।

"प्रातः संध्या......इकट्ठा कर रही है"—समासोक्ति अलं०।

प्रभाकर—सूर्य।

"अपने विजयी...हो गया"—उत्प्रेक्षा अलं०।
शनैःशनैः—धीरे धीरे।
उदयाचल बालमंदार—उदयाचल पर्वत पर उगा हुआ छोटा मंदार नामी स्वर्गीय वृक्ष।
पूर्वदिगंगना—पूर्वदिशारूपी अंगना (स्त्री)।
श्रोत्रिय—वेदज्ञ, वेदपाठी ब्राह्मण।
ख़ुमारी—नशा।
फ़ारिग़—छुट्टी।
ख़ैरख़्वाही—भलाई चाहना।
नुमाइश—बनावट।
गुंजायश—स्थान, जगह, समाई।
पैरा—(पैर) आगमन; आना।
परख—(सं० परीक्षा) जाँच।
तीर्थोदक—तीर्थ जैसे गंगा, यमुना का जल।
ओछा—(सं० तुच्छ। प्राकृत-उच्छ) क्षुद्र, छिछोरा।
टुच्चा—(सं० तुच्छ) नीच, कमीना, छिछोर।
तिह्रीदस्ती—तंग हाथ, ग़रीबी।
तरहदारी—शौक़ीनी।
नफ़ीस—उम्दा।

नवाँ प्रस्ताव

सरहंग—धृष्ट, प्रगल्भ, बागी।
दाँता किटकिट—लड़ाई झगड़ा।

दसवाँ प्रस्ताव

ग़ैरत—लज्जा।
शिष्टता—भलमनसाहत।
पस्तक़द—नाटा।
परिचारक—सेवक; भृत्य।
जघन्य—नीच।
तरहदारी—वज़ादारी, सजधज का ढंग।
छमछींरा—बहुत।
तस्बी—मुसलमानी माला।
ज़ब्त किये था—चुप था।
रुख़सत—विदा।

ग्यारहवाँ प्रस्ताव

अवलम्बनाय...सहस्रमपि—नीचे को गिरते हुए सूर्य की हजार किरणें भी उसको सम्हाल न सकीं।

वसीह—लम्बा चौड़ा।

आरास्ता (फ़ा० शब्द)—सजा हुआ, सुसज्जित।

ड्राइंग रूम—(अंग० Drawing Room) सजने या कपड़ा पहिनने का कमरा, दर्शन-गृह, लोगों से मिलने जुलने का कमरा।

हुस्नपरस्त—सौन्दर्योपासक।

वयक्रम—उम्र।

संजीदगी—गाम्भीर्य।

शऊर—सलीक़ा।

अलकावली—छल्लेदार बाल।

विकम्पित पुण्डरीक नेत्र—खिले हुए कमल समान नेत्र।

बालभाव—लड़कपन।

ओर—(सं० अवार=किनारा) अन्त, छोर।

मन्मथ—कामदेव।

आवेश—वेग, जोश।

सिद्धपीठ—तीर्थ या कोई तीर्थ-स्थान।

कीर्तिस्तम्भ—वह स्तम्भ जो किसी की कीर्त्ति स्मरण कराने के लिये बनाया जाय।

हर-नेत्र-हुताश-दग्ध अनंग—शिव के तीसरे नेत्र की आगी से जले हुए कामदेव।

सजीवन जटका—फिर से जिलाने वाला गुण या मंत्र।

यौवनचन्द्रोदय—जवानी रूपी चन्द्रमा का उदय।

रतिरसामृत—शृंगार रस रूपी अमृत।

सौदामिनी—बिजुली।

"वह अपने…कर रही थी"—उपमा अलं०।

"वयस्सन्धि…हस्तगत हुई"—उत्प्रेक्षा अलं०।

"इसका सुन्दरापा…जटका था"—यहाँ पर रूपक अलं० की एक लड़ी है।

"निस्सन्देह यह युवती……रंगशाला थी"—रूपक अलं० की लड़ी।

कोकिलकंठी—कोयल के समान शब्दवाली।

मुश्ताक़—इच्छुक।

बारहवाँ प्रस्ताव

धूर्तैर्जगद्वंच्यते—धूर्त लोग संसार को ठगते हैं।
नेचरिये—(अंग० Nature) नास्तिक जो ईश्वर को न मानकर केवल प्रकृति या नेचर ही को संसार का कर्त्ता-धर्त्ता मानते हैं।
हाफ़कास्ट—(अंग० Half Caste) करानी, यूरेशियन, दोगले।
कुम्मेद—(तुर्की कुमेत) वह घोड़ा जिसका रंग स्याही लिये लाल हो; इस रंग का घोड़ा बहुत मजबूत और तेज़ होता है।
आठो गाँठ कुम्मैद—अत्यन्त चतुर, छटा हुआ, चालाक, धूर्त।
सरिश्ते—विभाग।
सन्दीदी—सन्ती, राज़ा।
चर्क—चतुर, चमकीला।
बेलौस—पक्षपातरहित।
सरीर—चालाक।
ख़ियाक़त में ख़ाम—बुद्धि में कमी।
दामनगीर—संलग्न।
तुहफ़े—नजर, भेट, सौगात।
गौं—(सं० गम्य) घात, दाव, मतलब।
गुर्गा—(सं० गुरुग) गुरु का अनुगामी, जासूस, दूत।
मरदूद—भ्रष्ट बुद्धि, मूर्ख।
उपासनाकांड—आराधना, पूजा।
दारमदार—निर्भर।
गुट्ट—(सं० गोष्ठी) समूह, झुंड, दल।
कैन्डिडेट—(अंग० Candidate) उम्मेदवार।
फ़रमाइशें—आदेश, माँग।
मुहैया—उपस्थित करना।
सिफ़तें—गुण।
अर्गासु......ममरता धर्मे—हमें केवल मन चाहिये जिस एक के बिना जितने गुण हैं सब तिनके के समान हैं।
मुहताज—दरिद्र, निष्किंचन।
ज़ेहननशीन—(फ़ा० शब्द) दिल में बैठ जाना।
लाफ़बाज़—लाफ़नेवाला, झापनेवाला।

असरैत—आसरे या भरोसे पर रहनेवाले, सहारा पानेवाले, नौकर चाकर।

गदहपचीसी—प्रायः १६ से २५ वर्ष तक की अवस्था जिसमें लोगों का विश्वास है कि मनुष्य अनुभवहीन रहता है और उसकी बुद्धि अपरिपक्व रहती है।

तेरहवाँ प्रस्ताव

योर्थे...शुचिः—जो रुपये पैसे के मामले में शुद्ध या ईमानदार हैं वे ही पवित्र या ईमानदार हैं मिट्टी और जल से बार बार हाथ धोकर जो अपने को पवित्र करते हैं वे पवित्र नहीं हैं।

फ़ितनाअंगेज़ी-(फ़ा०शब्द)दुष्टता।

सकल गुणवरिष्ठ—सब गुणों में श्रेष्ठ।

श्रावक—जैन गृहस्थ, सरावगी।

थाती—धरोहर, अमानत।

कीमियागर—(फ़ा० शब्द) रसायन बनानेवाला।

खुशनवीसी—सुन्दर अक्षर लिखने की कला।

उजरत—मेहनताना।

समानसख्यम्—समान शील स्वभाव के तथा समान दुख में पड़े हुए लोगों में मैत्री होती है।

घात—दाँव।

अभिप्राय—मतलब।

चौदहवाँ प्रस्ताव

लाबलतोड़—लगातार, बराबर, शीघ्र।

अबतरी—घटाव, बिगाड़, अवनति, बुराई।

यक्षवित्त—कुबेर के समान धन-वाला।

पलित—जर्जर, शिथिल।

चोलीदामन का साथ—बहुत अधिक साथ या घनिष्ठता।

इश्तिआलक—उत्तेजना।

बेखरखशे—बेखटके।

देहक़ानी—ग्रामीण।

पन्द्रहवाँ प्रस्ताव

ऊटकटारा—(सं० उष्ट्रकण्ट) एक कटीली झाड़ी जिसे ऊंट बड़े चाव से खाता है।

नीचैर्गच्छति...चक्रनेमिक्रमेण—मनुष्य की दशा पहिये के चाके के समान कभी ऊपर कभी नीचे को जाती है अर्थात् कभी अच्छी दशा होती है और कभी खराब।

गतस्सकालो...वयम्—("उदुम्बरफलेनापि" के स्थान पर "उदुम्बरफलेभ्योऽपि" पढ़िये) वह समय गया जब लताओं में मोती पैदा होते थे अब तो गूलर के भी लाले पड़े हैं।

ग्रीष्मसन्तापतापित—गर्मी की ताप से जली हुई।

वसुधा—पृथ्वी।

नववारिद—नये बादल।

वनउपवन—बाग बगीचे।

वदान्य—उदार।

कथानक—उपन्यास, किस्सा।

"नदी नाले...बहनिकले"—उपमा अलं०।

कलध्वनि—मीठा शब्द।

"विमलजल... लायक हुए" उपमा अलं०।

"सूर्यचन्द्रमा...पुजवानेलगे"—उपमा अलं०।

अभ्रपटल—मेघों का समूह।

"असतीजारणी...... छिपना पड़ता है"—उत्प्रेक्षा अलं०।

अभिसारिका—नायिका के दश भेदों में से एक। वह स्त्री जो संकेत स्थल में प्रियतम से मिलने के लिये स्वयं जाय।

धारापात—घनघोर वर्षा।

"अथवा यह बिजली...... चिल्लाती है"—उत्प्रेक्षा अलं०।

घुणाक्षरन्याय—ऐसी कृति या रचना जो अनजान में उसी प्रकार हो जाय जिस प्रकार घुनों के खाते खाते लकड़ी में अक्षरों की तरह से बहुत से चिह्न या लकीरें बन जाती हैं। इस न्याय का

प्रयोग ऐसे स्थलों पर करते हैं जहां किसी के द्वारा ऐसा आकस्मिक कार्य हो जाता है जो उसे ज्ञात वा अभीष्ट न रहा हो।

"दिन में......हो जाता है"—उपमा अलं०।

समविषमभाव—ऊबड़ खाबड़ स्वरूप या दशा।

तत्त्वदर्शी—ब्रह्म का जाननेवाला, ब्रह्मज्ञानी।

"पृथ्वी पर...जाता ही रहा"—उपमा अलं०।

शग़ल—काम।

कपिरपि...तस्य—एक तो बंदर, दूसरे शराब के मद में मतवाला, तीसरे बीछी से डसा हुआ, चौथे पिशाच से ग्रसित ऐसे की दशा का क्या कहना।

नववारिद समागम—नये बादल का आगमन।

भेकमंडली—मेंढकों का समूह।

वाचाट—मुखर, बकवादी, गपोड़िया।

पखेरुओं—पक्षिगण।

जशन—(फ़ा० शब्द) जलसा, उत्सव।

कज़्ज़ाक—(तुर्की शब्द) डाकू, लुटेरा, चालाक।

सोलहवाँ प्रस्ताव

छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति—दुख में और भी दुख पड़ते हैं।

पैग़म्बर—अवतार, ईश्वरदूत।

गुनहगार—पापी।

सत्रहवाँ प्रस्ताव

चम्पत हुआ—गायब या अंतर्द्धान हुआ।

छनक—भड़क।

हैरतअंगेज़—भयजनक।

खाज़नादिर—कभी को या कभीर।

दामिल—(अ-दायमुल्ह हब्स) जन्म क़ैद।

फ़रोग़—उन्नति, वृद्धि।

तकमीला—पूर्णता।

अठारहवाँ प्रस्ताव

सुर्खरुई—प्रशंसा।

हमनिवाले—सहभोजी।

हक़ीर—(फ़ा० शब्द) तुच्छ।

उन्नीसवाँ प्रस्ताव

विपदि सहायको बन्धुः—जो विपत्ति में सहायता करे वही सच्चा बंधु है।

अवसान—अंत, ओर।

ईर्षा-कलुषित—डाह से काली।

बहिर्भूमि—बाहर की ओर; बहिरी ओर।

भौचक्की—घबराई हुई।

बीसवाँ प्रस्ताव

बन्धनानि......पङ्कजबद्धः—यों तो संसार में बहुत प्रकार के बन्धन हैं किंतु प्रेम की डोरी का बंधन कुछ और ही प्रकार का है, देखिये जो भ्रमर काठ के छेदने में निपुण है वही भ्रमर प्रेम के वश में हो कमल में बंधकर लाचार हो जाता है।

निरस्वार्थ—बिना मतलब के।

नामसंकीर्तन—नामोल्लेख।

चारुचंचरीक—भ्रमर, भवरा।

अद्यप्रातरेवानिष्टदर्शनम्—आज सबेरे ही अशुभ दर्शन हुआ।

आलबाल—थाल्हा।

लोफ़री—उद्दण्डी।

इक्कीसवाँ प्रस्ताव

बानीमुबानी—जड़ जमानेवाला।

तौहीन—अपमान।

बाईसवाँ प्रस्ताव

लजवीज़—(फा० शब्द) राय, फैसला।

कातिब—(फा० शब्द) लेखक।

तेईसवाँ प्रस्ताव

यत्रास्ते...तदपि मृत्यवे—जिस अमृत में विष की बूंद भी मिलावट है उससे भी मृत्यु ही होती है।